मूल्य : 20 रुपये

UGC APPROVED JOURNAL

ISSN 0973-1490

वर्ष-17, अंक-1

जुलाई-सितम्बर 2019

चिन्तन-सृजन

www.asthabharati.org

त्रैमासिक

आस्था भारती, दिल्ली

चिन्तन-सृजन

त्रैमासिक

वर्ष 17 अंक 1

जुलाई-सितम्बर 2019

संस्थापक-सम्पादक

बी. बी. कुमार

संयुक्त सम्पादक

शिवनारायण

आस्था भारती

दिल्ली

विषय-क्रम

	सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य	5
1.	पृथ्वी पुण्य गन्धवः *प्रो. किशोरी लाल व्यास*	7
2.	गाँधी विचार और आधुनिक हिन्दी कविता *डॉ. शशि पंजाबी*	12
3.	भारतीय संस्कृति में तुलसी पूर्व रामकथा *डॉ. शिवनारायण*	18
4.	कविता का समकाल *अनिल कुमार पाण्डेय*	27
5.	प्रवासी स्त्री-जीवन की दुश्वारियाँ *सोनपाल सिंह*	32
6.	विभाजन पर कुछ बातें *सर्वेश्वर प्रताप सिंह*	39
7.	भारतीय नारी की मार्मिक वेदना संदर्भ 'सिरी उपमा जोग' *डॉ. प्रमोद कुमार यादव*	51
8.	उपन्यास साहित्य में उत्तर-आधुनिकता *रमेश चन्द सैनी*	58
9.	समकालीन कविता पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव *डॉ. अदिति सैकिया*	63

समकालीन कविता पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव

डॉ. अदिति सैकिया

हमारे देश की मिट्टी में महापुरुषों को पैदा करने की असीम शक्ति है। इन्हीं महापुरुषों में स्वामी विवेकानन्द जी का नाम गर्व सहित लिया जाता है। 1863 ई. में कलकत्ता में जन्मे विवेकानन्द जी विलक्षण प्रतिभा के स्वामी, साधु-सन्तों का सम्मान और कुशाग्र बुद्धि जैसे गुणों से विभूषित थे। वेदान्त के प्रचारक स्वामी जी की वाणी में जादू तथा व्यक्तित्त्व में एक आकर्षण था। मात्र 39 वर्ष की अल्पायु में यद्यपि उनकी मृत्यु हो गई। लेकिन आज भी वे अपने अनोखे व्यक्तित्त्व और बेमिसाल प्रभाव के कारण जन-जन के मन में आदरपूर्वक बसा हुआ है। भारतीय संस्कृति के अग्रदूत विवेकानन्द जी एक ओजस्वी वक्ता एवं कर्मठ समाज-सुधारक थे। समाज-सुधार के क्षेत्र में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने देश में जिस सांस्कृतिक एवं राजनैतिक चेतना का संचार किया है, वह सराहनीय है। फ्रांस के नोबल पुरस्कार विजेता साहित्यकार रोमा रोलाँ को कविगुरु रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने एक पत्र में लिखा है—'यदि आप भारत को समझना चाहते हैं, तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए। उनमें सब कुछ सकारात्मक है, नकारात्मक कुछ भी नहीं है' (नवभारत के निर्माण में स्वामी जी की भूमिका-डॉ. केदारनाथ लाभ-स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान-पृ. 428)

19वीं शताब्दी में भारत की पावन भूमि में जन्म लेने वाले स्वामी विवेकानन्द जी विलक्षण प्रतिभा के व्यक्ति थे। उनका चिन्तन अद्वितीय था। उनकी वाणी में गरिमा है, प्रौढ़ता है। उनका विचार-प्रवाह देश की साहित्य को नवीन दिशाएँ प्रदान करता चला आ रहा है। उन्होंने वाणी के तप पर विशेष बल दिया। शिष्टता, नम्रता, उदारता, वाणी की मुदृता जैसे सद्गुणों से वे युक्त होते थे। स्वामीजी वेदान्त के विख्यात एवं प्रतिभाशाली आध्यात्मिक गुरु थे। अतः समाज में उनको सम्मान प्राप्त

*एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, मनोहारी देवी कनई महिला महाविद्यालय, डिब्रुगढ़, (असम)

होना स्वाभाविक बात थी। स्वामी विवेकानन्द जी ने अमेरिका के शिकागो में सन् 1893 ई. में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में भारत का मस्तक ऊँचा किया। उनका मत था कि प्रत्येक धर्म को अपनी स्वतन्त्रता और विशेषता को बनाए रखकर दूसरे धर्मों का भाव ग्रहण करते हुए उन्नत होना होगा। विश्व-भर से आए धर्म-प्रतिनिधियों को बताया—"मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद पैदा करना धर्म का काम नहीं है। जो धर्म मनुष्यों में टकराव पैदा करता है। वह कुछ सिरफिरे लोगों का निजी विचार अथवा मत हो सकता है, उसे धर्म की संज्ञा देना मनुष्य के धार्मिक विवेक का अपमान करना है, धर्म द्वन्द्व से परे है, धर्म का आधार है प्रेम, भाईचारा, सहानुभूति, दया, ममता, आत्मीयता तथा सह-अस्तित्त्व की भावना।" दर्शन में उनकी विशेष रुचि थी। पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन करते-करते विवेकानन्द जी का मस्तिक दार्शनिक द्वन्द्व से भर गया था। डेकार्ट का अहंवाद ह्यूम और बेन की नास्तिकता, डार्विन का विकासवाद, स्पेन्सर का अज्ञेयवाद सबने विवेकानन्द जी के मस्तिक को मथ डाला था। दर्शन और विचारों के विभिन्न स्रोतों से तथ्यों का संकलन कर नरेन्द्र अपने व्यक्तित्त्व का निर्माण कर रहे थे। उन्होंने पाश्चात्य दर्शन से तर्क, ब्रह्म समाज से एकेश्वरवादी निराकार भावना, गौतम बुद्ध से विवेक, महावीर से करुणा तथा दक्षिणेश्वर के महामानव श्री रामकृष्ण परमहंस से हर हृदय को आनन्द से आप्लावित करने वाली सरज भावुकता ली थी। उन्होंने शून्य को ब्रह्म सिद्ध किया और भारतीय धर्म दर्शन एवं अद्वैत वेदान्त की श्रेष्ठता का डंका बजाया। उनकी वाणी में संयम, ओज एवं मृदुता थी। उन्होंने जनसाधारण को उद्घोषित करते हुए कहा—"उठो, जागो और तब तक नहीं रुको, जब तक लक्ष्य ना प्राप्त हो जाए।" वाणी की मृदुता के ही बल पर इन्होंने सम्मान प्राप्त किया। रोमा-रोला ने उन्हें 'मंच-महारथी' का सम्मान देकर आदर प्रकट किया। स्वामी विवेकानन्द जी ने न केवल भारतभूमि से ही सम्मान पाया अपितु, विश्व के कोने-कोने में उनकी ख्याति है और इनके द्वारा बताए गए मार्गों का लोगों ने अनुसरण किया है।

'विवेकानन्द संचयनी' अध्ययन करने के बाद उनके सन्देशों का बोध होता है। उनके सभी आख्यानों के मूल में स्वावलम्बी तथा समुन्नत शब्द का निर्माण, राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, नारी-शिक्षा, भारतीय संस्कृति की महत्ता तथा अतीत का गौरव-गान आदि भावनाएँ प्रमुख रहीं। विवेकानन्द जी ने धर्म को अन्ध की दृष्टि से नहीं वरन् विश्व मानवता के विकास की दृष्टि से देखा। अपने को दीन-हीन और निकृष्ट समझने वाले पठित मध्य वर्ग को विवेकानन्द जी ने गर्व करने के लिए वेदान्त का दर्शन दिया।

महान व्यक्तित्व के अधिकारी स्वामी विवेकानन्द जी प्रेरणा के स्रोत हैं। उनकी वाणियों का प्रभाव हिन्दी कविता मानस पर पड़ा। उनके सन्देशों से केवल हिन्दी कवि ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व भी प्रेरणा लेता है।

विवेकानन्द जी द्वारा दी गई सम्पूर्ण शिक्षाएँ उनकी कृतियों में निहित है। स्वदेश प्रेम का भाव आपकी वाणी, उनका चिन्तन प्रबल एवं विकासवादी था। उन्होंने देश-सेवा तथा देशवासियों के उत्थान को ही अपना जीवन लक्ष्य बनाया। विवेकानन्द जी का कहना है—"भले ही मुझे बार-बार जन्म लेना पड़े और जन्म-मरण की अनेक यातनाओं से गुजरना पड़े लेकिन मैं चाहूँगा कि मैं उसे एकमात्र ईश्वर की सेवा कर सकूँ, जो असंख्य आत्माओं का ही विस्तार है। वह और मेरी भावना से सभी जातियों, वर्गों, धर्मों के निर्धनों में बसता है, उनकी सेवा ही देश अभीष्ट है।"

यह सत्य है कि कुछ हिन्दी कवियों के काव्य पर विवेकानन्द जी के प्रभाव को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। विवेकानन्द जी अपनी निष्ठा, देशप्रेम तथा उदारता के लिए प्रसिद्ध थे। उनके विचार स्वदेश प्रेम की भावना से प्रेरित थे। भारत में जनजागरण का शंखनाद करते हुए उन्होंने लिखा है—"खड़े हो जाओ, सुदृढ़ बनो, शक्तिवान बनो, सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर उठाओ और समझ लो कि अपने भविष्य के निर्माता तुम स्वयं हो। अपने होंठों को बन्द रखकर अन्तःकरण को खुला रखते हुए भारत के पुनरुत्थान कार्यों में पूरे परिश्रम से जुट जाओ। तुम्हारे कन्धों पर ही भारत और इसका 'भविष्य निर्भर है।'

हमारे देश के कवियों, लेखकों, ऋषियों एवं मनीषियों में देश के प्रति भक्ति की भावना प्रबल थी। इस दिशा में भला भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाम कैसे भुलाया जा सकता है, जिन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से न केवल विदेशी हुकूमत का पर्दाफाश किया अपितु अँग्रेजी शासन का घोर विरोध किया। चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, नील देव, सत्य हरिश्चन्द्र आदि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के कृतियों ने अँग्रेजी कुठाराघात से बचाया है। भारत में भिन्नता पर उन्होंने प्रकाश डाला है—

'भारत में सब भिन्न अति, ताहि सो उत्पात।
विविध हुए मतहूँ विविध, भाषा विविध लखात।
(भारत दुर्दशा—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'।)

राष्ट्रीयता की रक्षा करने में उन्होंने महान योगदान दिया। अँग्रेजों के शासन काल में भारतीय संस्कृति के साथ खिलवाड़ किया जा रहा था। ऐसे वातावरण में जब युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अवतरित हुए तो उन्होंने सर्वप्रथम समाज और देश की दशा पर विचार किया। साथ ही उन्होंने अपने साहित्यिक रचनाओं, नाटकों, निबन्धों और कविताओं के माध्यम से देश की जनता का ध्यान, राष्ट्रीय गौरवगरिमा और जातीय महत्ता की ओर खींचा। देश की जनता में उन्होंने अपने राष्ट्र के प्रति, अपनी भाषा हिन्दी के प्रति जागृति पैदा करने का अथक प्रयास किया।

विवेकानन्द जी का हिन्दी कवियों पर पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। विवेकानन्द जी की देशभक्ति से प्रभावित होकर राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त जी ने अपनी कृतियों

के माध्यम से देशप्रेम का भाव झलकाया है। उनकी रचनाओं में राष्ट्रभक्ति का भाव प्रबल होने के ही कारण आपको राष्ट्रकवि का सम्मान प्राप्त हुआ।

अपने युग को हीन समझना आत्महीनता होगी,
सजग रहो, इससे दुर्बलता और हीनता होगी।
जिस युग में हम युग वही तो अपने लिए बड़ा है
अहा! हमारे आगे कितना कर्मक्षेत्र पड़ा है। (द्वापर...मैथिली शरण गुप्त)

गुप्त जी सच्चे अर्थों में राष्ट्रकवि थे। 'भारती-भारती' में कवि की यह भावना दृष्टिगोचर होती है। राष्ट्रीय गौरव की अनुभूति, जन-जन में राष्ट्रीय भावना का संचार और राष्ट्रीय आन्दोलनों के आदर्शों की प्रतिष्ठा का पावन उद्देश्य लेकर इन्होंने अपने काव्य की रचना की। निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए उनकी राष्ट्र के प्रति प्रेम–

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश पर अभिमान है।
वह न नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।'
(भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त)

युगनायक निराला भी विवेकानन्द जी से प्रभावित हैं। निराला जी राष्ट्रप्रेमी हैं। दो महायुद्धों के बीच जितनी रचनाएँ की हैं, उनमें राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव अधिक मिलता है। डॉ. रामरतन भटनागर ने 'सामाजिक जीवन और साहित्य' में यह उल्लेख किया है कि...'निराला का काव्य नवोदित राष्ट्रीय चेतना और नव्य वेदान्त से सम्पृक्त लोकसेवी मानववादी आत्मास्फूर्ति का भण्डार है। वह गाँधी युग की भावात्मक अभिव्यक्ति है।'' (सामाजिक जीवन और साहित्य–डॉ. रामरतन भटनागर)

'जागो फिर एक बार', यमुना के प्रति, तुलसीदास, महाराज शिवाजी का पत्र आदि निराला की काव्य कृतियों में राष्ट्रीय चेतना का शंखनाद है। राष्ट्रीय गौरव, अतीत के प्रति मोह तथा पुरातन परम्पराओं के प्रति आस्था का उदात्त स्वर इन रचनाओं में मुखरित हुआ है। 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' शीर्षक कविता में देशभक्ति का स्वर मुखर है। विदेशी शासकों के विरुद्ध मोर्चा जमाने की प्रेरणा देते हुए शिवाजी कहते हैं–

'शत्रुओं के खून से
धो सके यदि एक तुम माँ का दाग,
कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे
निर्झर हो जाओगे,
अमर कहलाओगे। (निराला-अपरा)

विवेकानन्द जी देश के युवाओं की शक्ति को देश निर्माण में लगाना चाहते थे। उन्होंने देश की युवाशक्ति को, लोहे की मांसपेशियाँ फौलाद की नसें और भीमकाय इच्छाशक्ति, जिसको कोई रोक न सके–के रूप में विकास करने का आह्वान किया। उन्होंने युवाओं को और अधिक उद्‌बोधित करते हुए कहा–''देश को योद्धाओं की

आवश्यकता है। योद्धा बनो! चट्टान की भाँति डट जाओ। हिन्दुस्तान को चाहिए कि एक विद्युतोत्पन्न ज्वाला, जो राष्ट्र की नसों में नवचेतना फूँक दे।'' विवेकानन्द जी के सन्देशों और विचारधाराओं ने निराला को बहुत गहरे प्रभावित किया। कवि निराला जी भारतवासियों को जागरण का सन्देश देते हुए कहते हैं–

'जाओ फिर एक बार,
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण पंख तरुण किरण
खड़ी खोलती है द्वार
जागो फिर एक बार।' (परिमल–निराला, पृ. 187)

उनकी राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि में आध्यात्मिक चिन्तन और विवेकानन्द के विचारों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उनकी गद्य रचनाओं में इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। उनके उपन्यासों में संन्यासी पात्रों के प्रति विशेष आकर्षण, व्यापक चिन्तन तथा संकल्प सभी मिलकर विवेकानन्द जी की विचारधारा को ही परिलक्षित करते हैं। 'चोटी की पकड़' उपन्यास विवेकानन्द जी को समर्पित किया है। 'भक्त और भगवान' तथा 'स्वामी शारदानन्द महाराज और मैं' कहानियों में विवेकानन्द जी का दर्शन स्पष्ट है। इतना ही नहीं निराला जी भारतीय शूरवीरों को उद्‌बोधन देते हुए कह रहे हैं–

जागो फिर एक बार,
पशु नहीं वीर तुम, समर-शूर, क्रूर नहीं,
कालचक्र में हो दबे, आज तुम राजकुँवर
समर सरताज! (परिमल-निराला)

इतना ही नहीं निराला ने 'चोटी की पकड़' उपन्यास विवेकानन्द जी को समर्पित किया है। 'भक्त और भगवान' में स्वामी विवेकानन्द जी का दर्शन स्पष्ट होता है।

हिन्दी कवि रामधारी सिंह दिनकर जी का दर्शन विवेकानन्द जी से प्रेरणा अवश्य ग्रहण करता है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर जी का कहना है कि 'विवेकानन्द वह सेतु है, जिस पर प्राचीन और नवीन भारत परस्पर आलिंगन करते हैं। विवेकानन्द वह समुद्र है, जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रनीति, राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता तथा उपनिषद् और विज्ञान, सब-के-सब समाहित होते हैं।' दिनकर जी ने अपनी ओजस्विनी भाषा में राष्ट्रीय भावनाओं ओतप्रोत काव्य की रचना की। उनकी राष्ट्रीय भावना में क्रान्ति के तत्त्व अनुस्यूत हैं।

'स्वत्व माँगने से न मिले, संघात पाप हो जाए
बोलो धर्मराज, शोषित वे जिएँ या कि मिट जाएँ
न्यायोचित अधिकार माँगने से न मिले तो लड़ के
तेजस्वी छीनते समर को जीत या कि खुद मर के।

निःसन्देह कवि दिनकर के काव्य में स्वामी विवेकानन्द की-सी निर्भीकता और तेजस्विता तथा महात्मा गाँधी की कर्मठता विद्यमान है। उन्होंने अपने क्रान्तिकारी विचारों से देश की जनता को संघर्ष-पथ पर लाया।

हिन्दी कवि सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' जी के काव्य में भी विवेकानन्द जी का प्रभाव है। स्वयं अज्ञेय प्रभाव को बुरी चीज नहीं मानते हैं। उन्होंने प्रभाव से रचना-शक्ति की समृद्धता को बताया है। देशभक्ति तथा देशप्रेम में कुछ ऐसा जादू है कि लोग अपने-आप मस्त हो जाते हैं। अज्ञेय की कविता में देशप्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। उनकी व्यक्तिगत अभिज्ञता इत्यलम्, बन्दी स्वप्न, कविता में स्पष्ट रूप से वर्णित है। उनका यही मत है कि कारागार में रहने वाले क्रान्तिकारी का शरीर भले ही बन्द हो पर उसके प्राण मुक्त हैं। अतः देशभक्ति अज्ञेय के रोम-रोम में व्याप्त हुआ है। वैयक्तिकता पर महत्त्व देने के बावजूद समाज तथा देश के प्रति वे अपने दायित्व निबाहना चाहते हैं। अपने देश के लिए अगाध भक्ति में, अपनी सभ्यता तथा संस्कृति के प्रति गौरव में, अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा में, देश के प्रति बलिदान देने में, देश की सामाजिक, आर्थिक दशा सुधारने के प्रयत्न में उनकी देशभक्ति की अनुभूति प्रस्फुटित होती है। अर्थात् उनके काव्य में देशवासियों को अपने देश तथा उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा के निमत्त मर-मिटने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

नारी-समाज के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द जी की उक्तियाँ आज भी प्रासंगिक हैं। वे आमूल संस्कारक थे। उनकी वाणी में अद्‌भुत ओज था। उन्होंने स्त्री-शिक्षा को अधिक प्रोत्साहित किया। शायद इसलिए उनकी उक्तियाँ समाज-जीवन के लिए उपयुक्त हैं। भारतीय नारी-सम्बन्धी उनकी मौलिक विचारों का संग्रह 'Women of India' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है।

'भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती हैं। स्वामीजी ने आधुनिक युग में नारी के केन्द्रीय भाव में माँ के रूप में बड़ी प्रशंसा की है। विवेकानन्द जी का प्रभाव निराला पर आद्यन्त बना रहा। निराला जी ने भी कहा है—"भारतीय नारी की वर्तमान जागृति मातृशक्ति की दुर्गा-मूर्ति, बहन की रणविजयिनी शक्ति इन प्रश्नों का पर्याप्त उत्तर देगी।"

अज्ञेय की कविता में नारी का एक तो भारतीय रूप है और दूसरा विदेशी प्रभाव युक्त रूप। अज्ञेय ने 'चिन्ता' में लिखा है—"वह पुरुष की ललकार नहीं सह पाती है, वह अपनी प्रखरता दिखाती है।" (अज्ञेय-चिन्ता, पृष्ठ 138)

अतः स्पष्ट है कि नारी को स्वतन्त्र रूप से अपना व्यक्तिवादी स्वर गुंजित करने का मौका अज्ञेय की कविता में मिला है। मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी 'उर्मिला' काव्य में नारी के प्रति सम्मान की भावना को प्रकट किया है। उन्होंने—

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यहीं कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी'—
कहकर नारी को सम्मानित किया है।

स्वामी विवेकानन्द जी ने अपनी रचनाओं में नारी-शिक्षा तथा नारी-समानता पर अधिक बल दिया था। उनसे प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य के छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद जी ने भी 'कामायनी' में कुछ इस प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं—

'तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।'

(कामायनी—जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 58)

कवि रामधारी सिंह दिनकर भी विवेकानन्द जी से प्रेरणा अवश्य ग्रहण करते हैं। उन्होंने समय-समय पर अपनी नारी-सम्बन्धी धारणाओं को व्यक्त किया है। 'रेणुका' में नारी-भावना का बीजारोपण हुआ था। दिनकर के अनुसार नारी की पूर्णता माँ बनने में ही है—

नारी की पूर्णता को स्वप्न रूप करने में,
करते हैं साकार पुत्र ही, माता के सपने को।'

(रसवन्ती—दिनकर पृष्ठ 62)

उनकी 'रसवन्ती' में भी नारी-सम्बन्धी दृष्टि परम्परावादिनी ही रहती है—'उसमें कवि को माँ की ममता, तरुणी का संकल्प और बहन का प्यार दिखलाई पड़ता है। नारी का यही त्रिकोणात्मक स्नेह है।'—

माँ की ममता तरुणी का व्रत,
भगिनी कालेकर बनो प्यार (रसवन्ती—दिनकर, पृष्ठ 44)

अतः विवेकानन्द जी की रचनाओं में उनकी मौलिक नारी-भावनाओं को जैसे विश्व के अन्य कवियों का समर्थन प्राप्त हुआ हो।

भारतीय धर्म-संस्कृति को विश्व-स्तर पर पहचान दिलाने वाले विवेकानन्द जी ने मानव समता स्थापित करने का संकल्प किया था। साथ ही उन्होंने विश्व मानव की वन्दना की और नवीन मानवतावादी जीवन-दर्शन का उद्‌भव और विकास किया। जिसकी अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य के कुछेक कवियों की रचना में हुई है।

हिन्दी कवि सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के काव्य में मानव समता का भाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। दलित-वर्ग के प्रति सहानुभूति अर्पित करते हुए मानवतावादी विचारों से प्रभावित अज्ञेय दलित-धरा के आँसू पोंछकर सर्वसुख की कामना करते हैं। 'मैं वहाँ हूँ' शीर्षक कविता में अज्ञेय जी अपने-आपको सेतु कहते हैं, जो मानव को मानव से मिलाता है—

'जो हृदय से हृदय को
श्रम की शिक्षा से श्रम की शिक्षा को
कल्पना के पंख से

कल्पना के पंखों को
विवेक की किरण से विवेक की किरण को
अनुभव के स्तम्भ से अनुभव के स्तम्भ को मिलाता हूँ।
(इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये–अज्ञेय, पृष्ठ 20)

कवि दिनकर की स्वतन्त्र विचारशक्ति भी मानव को मानव के रूप में देखना चाहती है। अर्थात् वे केवल मानवतावादी हैं। इस नाना विध संसार में मानवता से उच्च मूल्य अन्य कोई नहीं है–मानव से उच्च वस्तु, इस सृष्टि में नहीं है–

'मनुज हूँ, सृष्टि का शृंगार हूँ मैं,
पुजारिन-धूलि से मुझ को उठा लो,
तुम्हारे देवता का हार हूँ मैं। (हुंकार-परिचय–दिनकरप, पृष्ठ 86)

सभी मानव को मानव-रूप में स्वीकार करना साथ ही उसे प्रतिष्ठित पद प्रदान करना ही छायावादी कवियों का मुख्य उद्देश्य है। मानवीय महत्ता पर अधिक बल देते हुए सुमित्रानन्दन पन्त जी ने कहा–

'सुन्दर है विहग-सुमन सुन्दर, मानव'
तुम सबसे सुन्दरतम।' (युगवाणी–पन्त, पृष्ठ 46)

महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी अपने काव्य में इसी मानवतावादी जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति की है। 'विधवा' शीर्षक कविता में मानव-हृदय में मानवता की स्थापना हेतु, कवि निराला कहते हैं कि मानव समाज! क्या तुमने कभी किसी दुखिया के दुःख को कम करने का प्रयत्न किया है। इसके अलावा 'तोड़ती पत्थर' तथा 'भिक्षुक' जैसी कविताओं में निराला जी ने, मानव में छिपे हुए देवता का दर्शन किया है; उदाहरणार्थ–

'ठहरो अहो मेरे हृदय में है, अमृत, मैं सींच दूँगा,
अभिमन्यु जैसे हो सकोगे, तुम, (परिमल–निराला, पृष्ठ 115)

इस सम्बन्ध में बच्चन सिंह जी का कहना है कि–'मानवतावाद का स्वर–निराला में सबसे अधिक मुखर हुआ। उन्होंने मनुष्य को अमृतपुत्र माना और समय-समय पर उसकी महानता का उद्घोष किया। मनुष्य की विषमता पर कशाघात करना उन्होंने अपना पहला कर्तव्य समझा–'मानव -मानव से नहीं भिन्न।' (मुकुटधर पाण्डेय–'शारदा पत्रिका' 1920 ई. में प्रकाशित, जबलपुर)

उपर्युक्त विश्लेषणोपरान्त, यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक भारत के क्रान्तिकारी विचारक स्वामी विवेकानन्द जी ने जो आत्मसम्मान और देशाभिमान जगाने का प्रयास उन्नीसवीं शताब्दी में किया था उसका गहरा प्रभाव हिन्दी भाषा के अनेक कवियों पर पड़ा। सम्पूर्ण विश्व में सम्मान प्राप्त करने वाले विवेकानन्द जी एक ऐसी शख्सियत थे जिन्होंने रुचिवादी परम्परा का घोर विरोध किया। उन्होंने कहा कि दुनिया को

करुणा और दया की आवश्यकता है। उनकी प्रतिभा गुरुतर है। मानवता के पुजारी स्वामी विवेकानन्द जी की वाणी में भारतीय संस्कृति की गरिमा, भक्ति की तन्मयता तथा राष्ट्रप्रेम की पवित्रता की त्रिवेणी समान रूप में प्रवाहित हुई है। नारी-शिक्षा के सम्बन्ध में उनकी उक्तियाँ आज भी प्रासंगिक हैं। अतः उनके विचारों का प्रस्फुटन हिन्दी भाषा के प्रायः समकालीन हिन्दी कवियों के काव्य में देखने को मिलता है।●

सन्दर्भः

1. रेणुका–दिनकर–चतुर्थ संस्करण 1960, उदयाचल प्रकाशन।
2. रसवन्ती–दिनकर–दशम संस्करण 1966, उदयाचल प्रकाशन।
3. उर्वशी–दिनकर–तृतीय संस्करण 1969, उदयाचल प्रकाशन।
4. दिनकर के काव्य में मानवतावादी प्रेम चेतना–डॉ. मधुबाला शिक्षार्थी–पहला संस्करण 1985, तक्षशिला प्रकाशन (दिल्ली)।
5. राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी काव्यकला–शेखर चन्द्र जैन–पहला संस्करण 1973, जयपुर पुस्तक सदन।
6. उर्वशी विचार और विश्लेषण–पहला संस्करण, सं. डॉ. बचनदेव कुमार, बिहार ग्रन्थ कुटीर।
7. कामायनी–जयशंकर प्रसाद भारती भण्डार, सं. 2018।
8. कवि निराला–नन्ददुलारे वाजपेयी–वाणी वितान प्रकाशन, 1965।
9. निराला ग्रन्थावली-भाग 1,2,3, सं. ओंकार शरद–प्रकाशन केन्द्र, सं. 2030।
10. पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण–दिनकर–द्वितीय संस्करण-1965, उदयाचल प्रकाशन।
11. भारत-भारती–मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य-सदन, झाँसी संवत् 1969।
12. अज्ञेय का रचना संसार–गंगा प्रसाद विमल–सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली, पहला प्रकाशन 1997।
13. भारत दुर्दशा–भारतेन्दु हरिशचन्द्र–पहला संस्करण, 1884 ई.।
14. भारत जागरण–स्वामी विवेकानन्द–अनुवाद महेश्वर हजारीका–पहला संस्करण-2012-विवेकानन्द केन्द्र असमीया प्रकाशन विभाग, गुवाहाटी।
15. Complete Words-Vol. 8- Lectures and Discusses : Women of India–Ramkrishna Math.
16. Complete Words-Vol. 3- Lecture from Colombo to Almore. My plan of campaign–edition-May 1997- publisher-Advaita Ashram (Publication Department) 5 Delhi Entally Road, Calcutta.
17. What Religion is–In the words of Swami Vivekananda–Edited by Swami Vidyatmananda 1st edition-1998- Advait Ashram (Publication Department) 5 Delhi Entelly Road, Calcutta.
18. अज्ञेय : कृष्णदेव शर्मा रीगल बुक डिपो, दिल्ली, पहला प्रकाशन 1983।

GOVT. OF INDIA- RNI NO. UPBIL/2014/56766
UGC Approved Care Listed Journal
ISSN 2348-2397

XIS

Shodh Sarita

An International Multidisciplinary Quarterly
Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal

• Vol. 7 • Issue 28 • October to December 2020

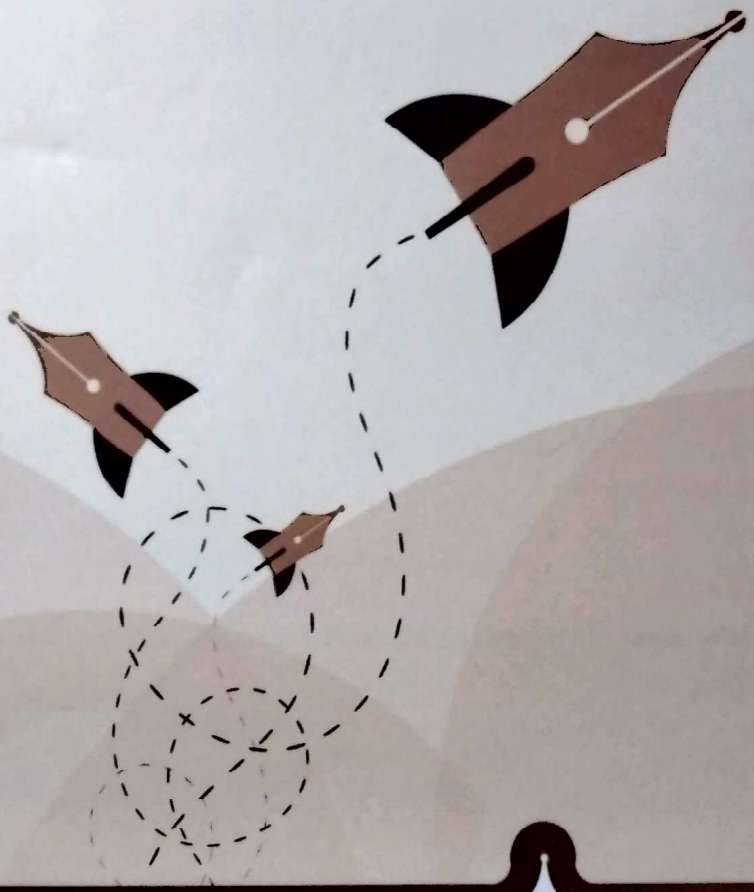

Editor in Chief
Dr. Vinay Kumar Sharma
D. Litt. - Gold Medalist

sanchar
Educational & Research Foundation

GOVT. OF INDIA- RNI NO. UPBIL/2014/56766
ISSN No. 2348-2397
UGC Approved Care Listed Journal

XIS

Shodh Sarita

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY QUARTERLY BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

• Vol. 7 • Issue 28 • October - December, 2020

EDITORIAL BOARD

Prof. Surya Prasad Dixit
University of Lucknow, Lucknow

Prof. Parmeshwari Sharma
University of Jammu, Jammu

Prof. Kumud Sharma
Delhi University, Delhi

Prof. Ram Prasad Bhatt
Hamburg University, Germany

Prof. Sudheer Pratap singh
Jawahar Lal Nehru University, New Delhi

Prof. Girish Pant
Jamia Millia Islamia University, New Delhi

Prof. S. Chelliah
Madurai Kamraj University, Madurai

Prof. Ajay Kumar Bhatt
Amity University, Haryana

Prof. Pavitar Parkash Singh
Lovely Professional Universiy, Punjab

Prof. M.P. Sharma
Jamia Millia Islamia University, New Delhi

EDITOR IN CHIEF

Dr. Vinay Kumar Sharma
Chairman
Sanchar Educational & Research Foundation, Lucknow

PUBLISHED BY

sancHar
Educational & Research Foundation

CONTENTS

S. No.	Topic		Page No.
1.	EMERGING ROLE OF NGOS IN CORPORATE SOCIAL RESPONSIBILITY IN INDIA : A CASE STUDY OF HELP AGE INDIA	Dr. Purva Mishra	1
2.	EFFECTIVENESS OF RABINDRA NRITYA ON LEVEL OF STRESS AMONG MOTHERS OF CHILDREN WITH AUTISM SPECTRUM DISORDER.	Ishita Mandal Lipika Mondal	7
3.	A STUDY ON STRESS MANAGEMENT IN BANKING SECTOR (WITH SPECIAL REFERENCE TO PRIVATE SECTOR BANKS IN TRICITY)	Richa Sharma Dr. Ankur Sethi	16
4.	DECODING T.E. HULME'S NOTION ON ROMANTICISM AND CLASSICISM WITH REFERENCE TO POEMS 'THE LOVE SONG OF J. ALFRED PRUFROCK' AND 'PORTRAIT OF A LADY'	Dr. Reena A. Desai	21
5.	THE MENACE OF FEMALE FOETICIDE IN INDIA : CURRENT SCENARIO AND SOCIO- LEGAL IMPLICATIONS	Dr. Subodh K. Singh	26
6.	HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT VARIATION IN ODISHA- A COMPARATIVE STUDY WITH 17 MAJOR STATES IN INDIA	Dr. Umakanta Tripathy Pragnya Laxmi Padhi	32
7.	SOCIAL MEDIA AS A KEY SOURCE FOR SPORTS NEWS IN INDIA	Vimal Mohan Prof. Bandana Pandey	39
8.	MICRO, SMALL AND MEDIUM ENTERPRISES AND ITS IMPACT ON WOMEN EMPLOYMENT IN KARNATAKA : AN OVERVIEW	Dr. Suresha K.P. Dr. Satamma. K	44
9.	A STUDY ON THE PREFERENCE OF RECREATIONAL SPACES BY EMPLOYEES IN IT SECTOR : SPECIAL REFERENCE TO GURUGRAM	Priyanka Goyal Dr. Sharmila Gurjar	48
10.	REPRESENTATION OF MASCULINITY IN HMAR FOLKTALES	Dr. Lalthakim Hmar	55
11.	A COMPARATIVE ANALYSIS OF SOCIAL MEDIA PLATFORMS FOR ADVERTISING	Dr. Sandeep Bhardwaj	59
12.	SOUTH-EASTERN NIGERIAN IBO CULTURE : A STUDY OF BUCHI EMCHETA'S THE JOYS OF MOTHERHOOD	Dr. S. B. Bhambar	66
13.	ANALYSING THE ISSUES AND CHALLENGES FOR RIGHT TO PRIVACY IN THE ERA OF COVID-19.	Heena L. Makhija Dr. Bhavesh H. Bharad	70

29.	LIMITATIONS OF SECULARIZATION THEORY AND GLOBAL RESURGENCE OF RELIGION IN THE GLOBALIZED WORLD	Souravie Ghimiray	154
30.	THE TRUTH ABOUT EXIT INTERVIEWS- A QUALITATIVE ANALYSIS	Dr. Archana Shrivastava	159
31.	A STUDY OF "CHALLENGES AND OPPORTUNITIES OF INDIAN FOUNDRY INDUSTRY"	Mrs. Vidya S. Swami Dr. A.M.Gurav	165
32.	KEY CHALLENGES THAT PREVENTS ORGANIZATION TO CREATE GREAT INTERNSHIP EXPERIENCE	Shweta Kumar Sonali Banerjee Pragyan Paramita	170
33.	ELECTRONIC CUSTOMER RELATIONSHIP MANAGEMENT PRACTICES IN INSURANCE INDUSTRY : CONSEQUENCES AND CHALLENGES	Priyanka Meena Praveen Sahu	174
34.	WILLIAM SHAKESPEARE'S "MY MISTRESS'S EYES ARE NOTHING LIKE THE SUN" : A TRANSITIVITY ANALYSIS	Dr. Avinash Chander	180
35.	A STUDY OF CONSUMERS' PANIC BUYING BEHAVIOR DURING PANDEMIC CORONAVIRUS (COVID - 19) AND CONSEQUENT LOCKDOWNS -WITH SPECIAL REFERENCE TO GUJARAT, INDIA	Kirti Makwana Prof. (Dr.) Govind B Dave	186
36.	ब्लॉग का दूरस्थ शिक्षा में योगदान : एक अध्ययन	आशीष कुमार डॉ0 आज्ञाराम पाण्डेय प्रो0 अमिताभ श्रीवास्तव रघुनाथ यादव	195
37.	मीराँ के काव्य में स्त्री चेतना	प्रतिमा खटुमरा	199
37.	ध्रुवस्वामिनी नाटक में नारी मुक्ति की छटपटाहट	विजय सिंह	202
38.	भारत में नागरिकता संशोधन कानून 2019 की आवश्यकता–बांग्लादेश के परिप्रेक्ष्य में	अली हसन	206
39.	प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक सरोकार	डॉ0 अदिति सैकिया	209

ISSN - 2348-2397
APPROVED UGC CARE
SHODH SARITA
SHODH SARITA
Vol. 7, Issue 28, October-December, 2020
Page Nos. 209-212
AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक सरोकार

डॉ0 अदिति सैकिया*

शोध सारांश

हिन्दी उपन्यास साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर मुंशी प्रेमचन्द ने आमलोगों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज में व्याप्त जातिवाद, साम्प्रदायिकता तथा गरीबी से जुड़ी दर्दनाक विसंगतियाँ आदि आम आदमी की ज्वलन्त समस्याओं का यथायथ वर्णन किया है। प्रेमचन्द ने आमलोगों की तरह समाज को बहुत गहराई से देखा, जाना और भोगा भी है। वे चाहते हैं कि सामाजिक कुरीतियों रूढ़ियों और अंधविश्वासों का विनाश हो। मुंशी जी एक ऐसे कथाकार है जिनके लिए रचनाओं के साथ ही सामाजिक सरोकार भी बहुत मायने रखते हैं। उपन्यासों के जरिए उन्होंने पाठक को समाज के उन सच्चाइयों को दर्शन कराए हैं जो कहीं न कहीं आज भी हमारे समाज में मौजूद है। समाज के दलित तथा शोषित वर्गों, आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के शिकार साधारण लोगों के अधिकारों के लिए जूझती मुंशी प्रेमचन्द जी के हर उपन्यास हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठतम निधि है। 'सेवासदन' से लेकर 'गोदान' तक उन्होंने अपने हर उपन्यासों में समाज के विभिन्न पहलुओं, उसके सरोकारों का बड़ी बेबाकी से दृष्टिपात किया है।

Keywords : सामाजिक सरोकार, उपन्यास, शोषण, साम्प्रदायिकता, दलित वर्ग, नारी जीवन, कुप्रथा, अनमेल विवाह आदि।

यह सर्वविदित है कि साहित्यकार जीवन और जगत के साथ पूर्णतः जुड़े होते हैं। इसलिए उनकी रचनाओं में अपने युग की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब झलकता है। साहित्य और समाज का जो अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है उसे हम विश्व के इतिहास के पन्नों पर अंकित पाते हैं। इंगलैंड के बर्नाड शा, डिकेन्स, इलियट, फ्रांस के रोमारोला, अलेवयर कामू, सात्रे, चीन के लू शून और भारतवर्ष के रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रेमचन्द आदि विभिन्न देशों के महानुभव साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को नई दिशा दी है। सच्चा साहित्यकार अपने देश और समाज की वास्तविक दशा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। निःसन्देह उपन्यास भी समाज का व्यापक दर्पण होता है। आलोच्य उपन्यासकार प्रेमचन्द जी का कथन है कि "जीवन पर साहित्य से अधिक प्रकाश और कौन वस्तु डाल सकता है क्योंकि साहित्य अपने देश–काल का प्रतिबिम्ब होता है। जो पूर्णतः सत्य है।"[1] उन्होंने जमींदारी प्रथा के समय की सामाजिक और आर्थिक हालात का यथार्थ चित्रण किया है।

'सेवासदन' से लेकर 'गोदान' तक प्रेमचन्द जी के समस्त उपन्यासों में समाज का चित्रण बड़ी सफलता के साथ हुई है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतवर्ष के दलित वर्ग की आशा–आकाक्षाओं, सुख–दुःख, संघर्ष और कलह को मुखरित किया है। वे युगीन समस्याओं के निदान का प्रयत्न भी करते हैं। नारी जीवन की दुख–दर्द के चित्रण में भी वे सिद्धहस्त हैं। मूलतः उनके उपन्यासों की मूल भावभूमि सामाजिक है। उनका कहना है – "जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है, चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है। उसकी अदालत समाज है, इसी अदालत के सामने वह अपना इस्त गासा पेश करता है, और उसकी न्यायवृत्त तथा सौन्दर्यवृत्ति के जाग्रत करके अपना यत्न सफल समझता है।"[2]

भारतीय समाज का कोई ऐसा कोना शायद नहीं है जहाँ प्रेमचन्द के साहित्य की किरण ने प्रवेश न किया हो। सूर्य की किरणों की भाँति उनका साहित्य भी समाज में चेतना का संचार करता है। उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को अपनी जमीन की जड़ो से जोड़ा। इसके साथ–साथ पर्याप्त मात्रा में नए सरोकार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने कथा साहित्य में तत्कालीन समाज के वेश्यावृत्ति जैसी समस्या को सबल तरीके से उठाया है। 'सेवासदन' सामाजिक दृष्टि का सर्वप्रथम उपन्यास है। डॉ. बच्चन सिंह का कहना है कि "यह भारतेन्दु युग से चली आती हुई वैचारिक समस्याओं – दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति आदि का प्रथम रचनात्मक रूपायन है। वस्तुतः यह आर्य समाज की सुधारवादी संरचना के समानान्तर साहित्यिक संरचना थी। प्रेमचन्द पूर्व के हिन्दी उपन्यासों में भी वेश्यावृत्ति का उल्लेख है जिसके प्रति पाठकों में घृणा का भाव जागरित किया गया है।

*एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा – हिन्दी विभाग, मनोहारी देवी कनई महिला महाविद्यालय, डिब्रूगढ (असम)

प्रेमचन्द ने वेश्यावृत्ति को नहीं वेश्या जीवन को अपना विषय बनाया है। प्रेमचन्द ने उनके साथ अपनी सहानुभूति ही नहीं दिखाई है, बल्कि उन तथ्यों का भी पर्दाफाश किया है जो मध्यवर्गीय बहू–बेटियों को वेश्या बनने के लिए बाध्य करते हैं। इनकी जिम्मेदारी बहू–बेटियों पर नहीं स्वयं समाज पर है।''[3]

1916 ई. में लिखित प्रेमचन्द जी का सर्वप्रथम उपन्यास 'सेवासदन' में एक नारी के वेश्या बनने के मूल कारणों से लेकर इस सामाजिक कुप्रथा को दूर करने के उपायों तक का वर्णन विस्तार से किया है। उन्होंने विवाह समस्या की ओर समाज का ध्यान भी आकर्षित किया है। साथ ही दहेज प्रथा के दुष्परिणामों को भी दिखाया गया है। प्रेमचन्द जी वेश्या वृत्ति को समाज से एकदम समाप्त करना चाहते हैं। उन्होंने इन गम्भीर समस्याओं को केवल उठाया ही नहीं, उन्हें उनके आदर्शपूर्ण समाप्ति की ओर भी पहुँचाया है। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों का डटकर विरोध किया है। इसलिए वे अपने छात्र पद्म सिंह के माध्यम से कहते हैं कि ''हमारा कर्त्तव्य है हम उन्हें सुमार्ग पर लायें, उनके जीवन को सुधारें और यह तभी सम्भव हो सकता है, जब वे शहर से बाहर दुर्व्यसनों से दूर रहें।''[4] इस उपन्यास को पढ़ने और विश्लेषण करने के बाद हम भी डॉ. रामविलास शर्मा जी की तरह कह सकते हैं कि ''इस समाज–व्यवस्था में सम्पत्ति के रक्षक सदाचार की आड़ में वेश्यावृत्ति को प्रश्रय ही नहीं देते, वेश्याओं को जन्म भी देते हैं। प्रेमचन्द जी ने सामाजिक सम्बन्धों की छानबीन कितनी गहराई से की है, यह इसी से जाहिर होता है कि उन्होंने वेश्यावृत्ति के मूल प्रेरक शक्तियों को कठघरे में खड़ा कर दिया है।''[5]

प्रेमचन्द जी अपने उपन्यासों के सृजन कर्म में भारतीय जमींदारी प्रथाओं को बेनकाब करना चाह रहे थे। सरकारी अफसरों, जमींदारों के द्वारा शोषित किसानों के शोषण का भयंकर रूप उनके उपन्यासों में अनेक स्थानों में मिलते हैं। **'प्रेमाश्रम'** उपन्यास में दारोगा नूर आलम सुकरबू चौधरी को किस जालसाजी से फँसाता है इसका सुन्दर वर्णन किया है। इस उपन्यास में उन्होंने युगीन विसंगतियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर बुराई को दूर करने का काल्पनिक आदर्शवादी समाधान खोजा है। उन्होंने यह प्रयास किया है कि समाज की मान्यताएँ बदलें, लोग बुराइयों से बचे और एक स्वस्थ समाज की स्थापना हो।

समाज के धनिक वर्ग द्वारा निर्धन वर्ग का शोषण किया जाता है। आर्थिक विवशता के कारण गरीब लोग मुँह भी नहीं खोल सकते हैं और अपमान के खून का घूँट पीकर रह जाते हैं। प्रेमचन्द जी अपने उपन्यासों के माध्यम से गरीब किसानों की दयनीय दशा और उनके समस्याओं का उद्घाटन करते हुए उन समस्याओं के समाधान का उपाय भी सुझाते हैं। उन्होंने भोले–भाले किसान वर्ग में उभरती एक नयी विद्रोही पीढ़ी का चित्रण करके शोषित किसानों के मुक्ति संग्राम को दिशा दी है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास के पात्र बलराज स्पष्ट चुनौती भरे शब्दों में कहता है – ''जमींदारी कोई बादशाह नहीं है कि चाहे जितनी जबरदस्ती करे और हम मुँह न खोलें।''[6] अतः प्रेमचन्द जी के इन उपन्यासों में समाज को सुधारने का यत्न स्पष्टतया दिखायी पड़ता है। दहेज प्रथा देश में महामारी की तरह फैलता जा रहा है। आज भी भारतीय समाज में दहेज प्रथा एक ऐसी रूढ़ि है जो भारतीय समाज की जड़ों को खोखला कर रहीं हैं। प्रेमचन्द जी का 'निर्मला' नामक उपन्यास एक ऐसी अभागिन नारी की कहानी है जिसका जीवन समाज में दहेज की कुप्रथा के कारण उत्पन्न अनमेल विवाह की वेदी पर बलिदान हो जाता है। इस उपन्यास की नायिका सोलह वर्षीय निर्मला दहेज न दे सकने की विवशता के कारण वृद्ध दुहाजू के साथ व्याही जाती है और अपने जीवन को बर्बाद कर देती है। ''निर्मला' से एक अभागिन स्त्री को लेकर समाज की रूढ़िवादिता का उन्होंने वर्णन किया है। अनमेल विवाह एक निकृष्ट सामाजिक बुराई है। दुहाजू तोताराम का सारा परिवार इसी अनमेल विवाह के दुष्परिणाम है।

दहेज की कुप्रथा ने भारतीय समाज में बड़ा भयंकर रूप धारण कर लिया है। प्रतिदिन कितनी ललनाओं को आग की लपटों में झोंक रहा है। 'निर्मला' उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने डॉ. भुवन मोहन नामक पात्र के द्वारा आधुनिक युग के युवक के नैतिक विचार शून्य एवं नीच मनोवृत्ति पर पर्दाफाश किया है। लेकिन बाद में भुवनमोहन से अपनी गलती का प्रायश्चित करवाते हुए, अपने छोटे भाई का विवाह निर्मला की छोटी बहन कृष्णा के साथ बिना दहेज लिए करवाया है। इसके द्वारा उपन्यासकार यह कहना चाहते हैं कि नव युवकों के सद्प्रयत्नों से ही दहेज जैसी कुप्रथा को दूर किया जा सकता है। वर्तमान समाज को भी ऐसे युवा–युवतियों की जरूरत हैं जो अपने पैरों पर खड़े होकर अपने पसीने की कमाई से कुछ कर गुजरने का साहस रखते हों, जिन्हें किसी दहेज की जरूरत नहीं हो।

उनके 'रंगभूमि' उपन्यास में औद्योगिकरण के दुष्परिणाम के साथ–साथ गाँव के उजड़ने और किसानों के संकटों का वर्णन है। इसमें सामन्तवाद और पूँजीवाद के विरूद्ध आन्दोलन का संकेत भी है। इस उपन्यास की मुख्य कथा अंधे भिखारी सूरदास को लेकर लिखा गया है, जो अपनी और गाँव की जमीन के लिए मरते दम तक लड़ता है। डॉ. रामविलास शर्मा जी ने 'रंगभूमि' उपन्यास के बारे में कहा है कि –''यह सन् 20 और 30'' के बीच का उपन्यास है। जब हिन्दुस्तान में बड़े–बड़े नेताओं की तरफ से राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन न हो रहा था, जब अंग्रेज कहते थे कि देश में शान्ति है। तब भी सूरदास लड़ रहा था –– ''फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो। यह भारत की जनता का स्वर था।''[7]

जातिवाद हमारे समाज में वैमनस्य के बीज बो रहा था। जाति–पांति के भेदभाव की दृढ़ श्रृंखलाये प्रेमचन्द जी के समय ग्राम्य समाज को जकड़े हुए थे। धर्म को लेकर समाज में अनेक ढ़ोंग और रूढ़ियों का बोल बाला था। ऐसे समय में साहित्यकारों

को सजग रहना, जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता आदि अनेक क्षेत्रों में कुरीतियों को समाप्त कर देने का प्रयास करना चाहिए। आलोच्य उपन्यासकार प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों को दूर कर नये नैतिक आदर्शों की स्थापना का प्रयास किया है। समाज में भेदभाव का विरोध करते हुए प्रेमचन्द ने "**कायाकल्प**' उपन्यास के पात्र चक्रधर के जरिए कहा है कि "हों कृष्ण राम, ईसा, मुहम्मद बुद्ध" सभी महात्माओं का समान आदर करना चाहिए। ये मानव जाति के निर्माता हैं।"[8]

मध्यवर्गीय समाज में आभूषण प्रेम प्रदर्शन भाव कितना सघन होता है तथा देश की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति क्या है, इन पर प्रेमचन्द में "**गबन**' उपन्यास में प्रकाश डाला है। विलास प्रिय जीवन को त्याग करने वाली जलपा का उत्कर्ष और रमानाथ का अपकर्म दिखाकर इस उपन्यास में प्रेमचन्द जी यह कहना चाहते हैं कि मध्यवर्गीय समाज का व्यर्थ आडम्बर एक दिन उसको ले डूबता है। मध्यवर्गीय समाज में पले लोगों की नजरों में सच्चाई और आत्म–सम्मान से ज्यादा महत्व झूठी मान–मर्यादा का है। इस उपन्यास के सम्बन्ध में डॉ.रामरतन भटनागर ने कहा है कि "समाज के सच–झूठ के मान, उसके दिखावे की भावना, उसकी न्याय भावना का खोखलापन, उसके प्रेम और ईश्वर विश्वास की खिल्ली जैसी इस उपन्यास में मिलेगी वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।"[9]

समाज में फैली हुई आवर्जनाओं जैसे अछूतों की समस्या, खेत मजदूरों और गरीब किसानों के लिए जमीन की समस्या, लगान कम करने की समस्या, शोषितों तथा दलितों की दयनीय दशा आदि को प्रेमचन्द ने '**कर्मभूमि**' उपन्यास में अपने सुधारवादी पात्र अमरकान्त तथा सहयोगियों के माध्यम से दूर करने का निदान प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द ने '**कर्मभूमि**' उपन्यास में अपने सुधारवादी पात्र अमरकान्त तथा सहयोगियों के माध्यम से दूर करने का निदान प्रस्तुत किया है। डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है कि – "प्रेमचन्द ने कर्मभूमि को पहली बार मजदूरों और विद्यार्थियों को एक साथ अंग्रेजों का मुकाबला करते दिखाया है।"[10] प्रेमचन्द जी का विचार है कि जिन कन्धों पर समाज का आधार है, उन्हें समाज के अधिकार प्राप्त होना चाहिए। अछूतों को मन्दिर प्रवेश का अधिकार समर्थन करके, हड़ताल आदि के द्वारा शोषकों को उचित शिक्षा देने का विधान भी दिया है। इस उपन्यास में धर्म की आड़ में अपने कर्मों को छिपाने वाले पण्डे पुजारियों की भी पोल खोली गयी है और यहाँ स्पष्ट रुप से बताया गया है कि ये लोग भगवान के भक्त और पूजारी बनते हैं, परन्तु, जुआ खेलते हैं, भंग पीते हैं, झूठी गवाहियाँ देते हैं। प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यासों में केवल सामाजिक व्यवस्थाओं का उल्लेख और समस्याओं का वर्णन ही नहीं किया वरन् उनका हल भी प्रस्तुत किया है। विनय मोहन शर्मा जी के शब्दों में – "वे समाज व्यवस्था पर एक हाथ से प्रहार करते और दूसरे हाथ से उसको सहलाते थे। समाज की बुराईयों को प्रस्तुत करना ही वे अपना धर्म न मानते थे, प्रत्युत उनका हल खोजना भी वे आवश्यक समझते थे।"[11]

हिन्दी और उर्दू के महानतम लेखकों में शुमार प्रेमचन्द जी का उपन्यास साहित्य हमारे जातीय जीवन का दर्पण है। वे किसानों के लेखक हैं। उनके समय कर्ज के बोझ से लदा हुआ अधिकांश भारतीय समाज असन्तोष के धुएँ में साँस ले रहा था। प्रेमचन्द ने भारतीय समाज के प्रत्येक अंग मजदूर, किसान, मध्यवर्गीय परिवार आदि की आर्थिक स्थिति अपने उपन्यासों में सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। इस सम्बन्ध में डॉ. बच्चन सिंह का कहना है –"प्रेमचन्द के साहित्य जगत में प्रवेश के साथ ही हिन्दी उपन्यास में एक नया मोड़ आता है। अभी तक हिन्दी पाठक जासूसी का चमत्कार और तिलस्म के आश्चर्यजनक करिश्में देख रहे थे। ऐतिहासिक रोमांसों की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं थी। उनमें सनातन धर्मी प्रतिक्रियावादी मनोवृत्तियाँ, पर्दा–प्रथा का समर्थन थोथे प्रतिबिम्ब का अनुमोदन, सहश शिक्षा तथा विधवा विवाह का विरोध स्पष्ट दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द ने इस भूल भूलैया और प्रतिक्रियावादी स्थितियों से बाहर निकलकर हिंदी उपन्यासों को वास्तविकता की जमीन पर खड़ा किया।"[12] उनके कालजयी उपन्यास 'गोदान' को ग्रामीण जनता अथवा किसान वर्ग का महाकाव्य भी माना जाता है। इस उपन्यास का नायक होरी सारी जिन्दगी ऋण के फन्दे में गर्दन डाले हुए छटपटाता रहता है। जमींदार, पूंजीपति, पुलिस, साहूकार आदि धनिक वर्ग ऐसे जहरीले साँप के समान हैं जो अपने विष दन्त से होरी जैसे गरीब किसान को डँस लेता है। निर्धन कृषक वर्ग की करुण जीवन गाथा "गोदान' में केवल पीड़ितों के दुःख प्रकाश का वर्णन मात्र नहीं, वरन शोषितों के प्रतीक होरी के मृत्यु के रूप में समाज को दयनीय स्थिति में ले जानेवाली शोषक समाज–व्यवस्था की मृत्यु का संकेत भी है। उन्होंने यह भी दिखाया हैं वर्तमान सामाजिक व्यवस्था इस कारुणिक स्थिति के लिए उत्तरदायी है। गोदान का जीवन दर्शन है – "ऐसे समाज की स्थापना, जिसमें मानव शोषण न होता हो, जिसमें सौ के दुबला एक के मोटे होने जैसी बेहयाई न हो। जिसमें एक नहीं सभी मोटे हो।"[13]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य की यथार्थवादी परम्परा की नींव रखने वाले प्रेमचन्द जी के समग्र उपन्यास भारतीय समाज व्यवस्था का यथार्थ प्रतिबिम्ब सामने ला देता है। उन्होंने समाज के विविध पक्षों पर जमकर लिखा है। उनके उपन्यासों के केन्द्र में आम आदमी है। वे समाज में रहने वाले उनलोगों को भी नहीं भूले हैं, जो चोरी करके और डाका डाल कर अपना पेट भरते हैं। भारतीय जन–जीवन का खूबसूरत चित्रण, समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण एवं किसानों की दयनीय अवस्था का अत्यन्त दुःखजनक वर्णन उनके उपन्यासों में देखने को मिलते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कथन यहाँ उल्लेख करना समीचिन

होगा –"अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, सुख–दुःख और सूझ–बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोपड़ियों से लेकर महलों तक, खोमचें वालों से लेकर बैंकों तक, गॉव से लेकर धारा–सभाओं तक आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव कोई नहीं ले जा सकता।"[14] हम कह सकते हैं कि **'सेवासदन'** से लेकर **'गोदान'** तक प्रेमचन्द जी के समग्र उपन्यास भारतीय समाज का दर्पण है। आम आदमी को उन्होंने अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। अपने युग की परिस्थितियों एवं सामाजिक व्यवस्थाओं की झलक उनके उपन्यासों में मिलती है। उन्होंने समाज को बहुत गहराई से देखा, जाना और समझा भी था। अपने उपन्यासों में उन्होंने जिस सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त किया है, वह उनका देखा हुआ ज्ञान है। उपरोक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में समाज के उन सच्चाईयों को दर्शन कराया है जो आज इक्कीसवीं सदी में भी हमारे समाज में कहीं न कहीं मौजूद है। अतः मानव प्रकृति के पारखी प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में शोषण विरोधी, आम आदमी के दुःख–दर्द और अभाव का प्रामाणिक चित्रण हुआ है।

सन्दर्भ :–

1. प्रेमचन्द – कुछ विचार, पृष्ठ 77
2. प्रेमचन्द – उपरिवत, पृष्ठ 9
3. डॉ. बच्चन सिंह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 195
4. प्रेमचन्द – सेवासदन, पृष्ठ 215–216
5. शर्मा, डॉ. रामविलास – प्रेमचन्द और उनका युग, पृष्ठ 36–37
6. प्रेमचन्द– प्रेमाश्रम – पृष्ठ 67
7. शर्मा, डॉ. रामविलास – प्रेमचन्द और उनका युग, पृष्ठ 80
8. प्रेमचन्द –कायाकल्प, पृष्ठ 227
9. भटनागर, डॉ. रामचरण– प्रेमचन्द आलोचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 135
10. शर्मा, डॉ. रामविलास – प्रेमचन्द और उनका युग, पृष्ठ 84
11. शर्मा, डॉ. विनयमोहन– साहित्यावलोक, पृष्ठ 155
12. डॉ. बच्चन सिंह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 194 से उद्धृत
13. श्री राकेश –उपन्यासकार प्रेमचन्द और गोदान, पृष्ठ 85–86
14. श्री अग्रवाल – राजेन्द्र मोहन – कर्मभूमि : समीक्षा, पृष्ठ 95–96

सहायक ग्रन्थों की सूची :–

1. शर्मा, डॉ. रामविलास शर्मा – प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993
2. श्री राकेश –उपन्यासकार प्रेमचन्द और गोदान, सीतापूर रोड, लखनऊ – 7
3. भटनागर, डॉ. महेन्द्र –समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द, ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली–7, 1982
4. प्रेमचन्द– कुछ विचार – सरस्वती प्रेस, दिल्ली, 1982
5. प्रेमचन्दजी का सभी उपन्यास।
6. डॉ. बच्चन सिंह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, 2007

❑❑❑

ISSN : 2249-930X

हिन्दी अनुशीलन

त्रैमासिक

(पीयर रिव्यूड व यूजीसी केयर लिस्टेड जर्नल)

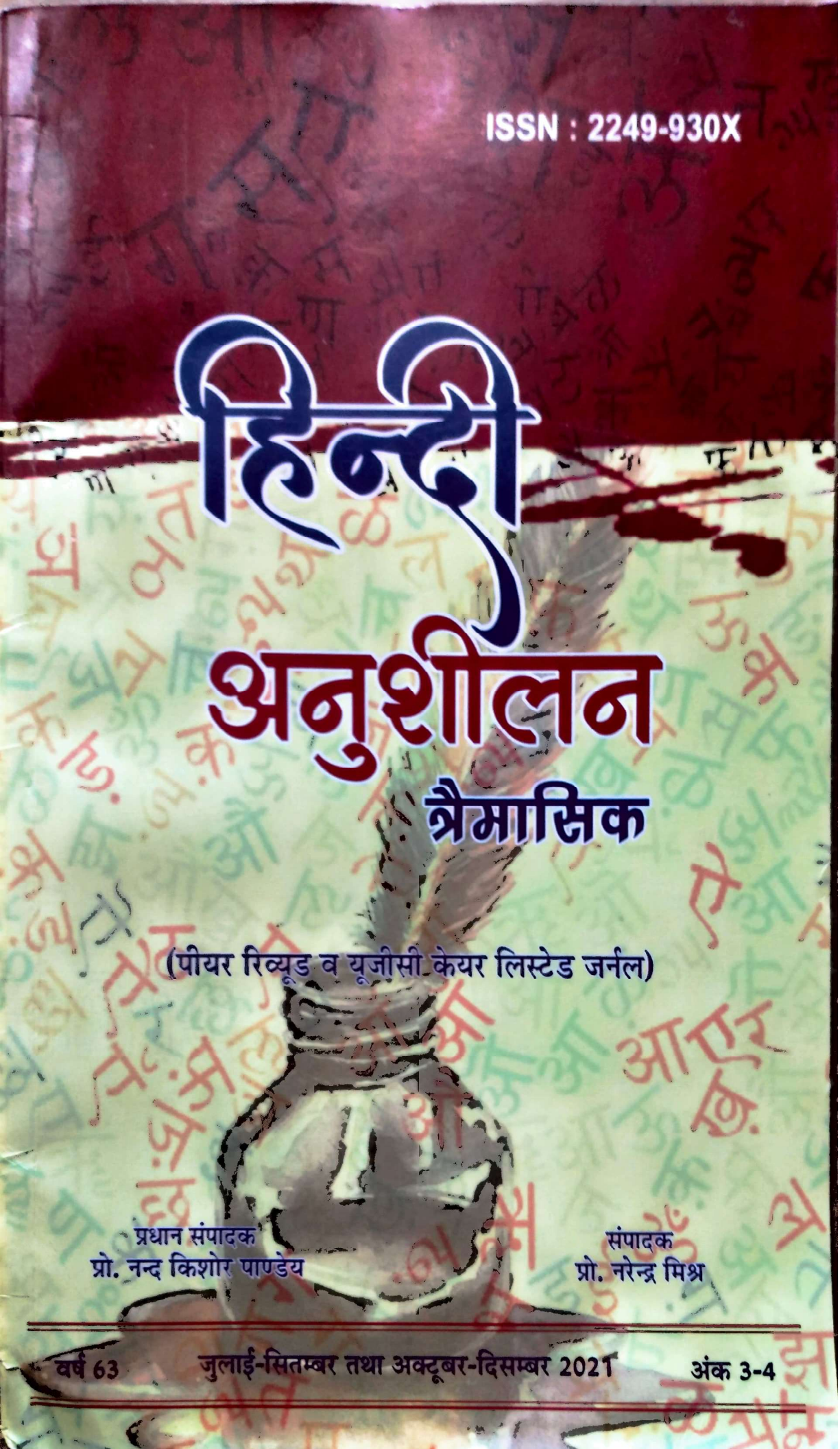

प्रधान संपादक
प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

संपादक
प्रो. नरेन्द्र मिश्र

वर्ष 63 जुलाई-सितम्बर तथा अक्टूबर-दिसम्बर 2021 अंक 3-4

हिन्दी अनुशीलन

(पीयर रिव्यूड व यूजीसी केयर लिस्टेड जर्नल)

वर्ष 63 जुलाई-सितम्बर तथा अक्टूबर-दिसम्बर 2021 अंक 3-4

ISSN : 2249-930X

परामर्शदाता
प्रो. कमल किशोर गोयनका
प्रो. सुरेन्द्र दुबे
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

प्रधान सम्पादक
प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

सम्पादक
प्रो. नरेन्द्र मिश्र

सम्पादन सहयोग
डॉ. निर्मला अग्रवाल
प्रो. मीरा दीक्षित

भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयागराज

क्रम

विश्वबोध के कवि गोस्वामी तुलसीदास 7
प्रो. नन्द किशोर पांडेय

तुलसी का साहित्यिक एवं सामाजिक सन्दर्भ 14
प्रो. नरेन्द्र मिश्र

श्रीमन्त शंकरदेव के काव्य में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना 24
प्रो. प्रदीप के. शर्मा

अज्ञेय का काव्य-चिन्तन 27
डॉ. अखिलेश कुमार शंखधर

रामविलास शर्मा का संस्कृति विषयक चिन्तन-संस्कृति क्या है? 32
डॉ. बिजय कुमार रबिदास

नाथ पंथ का संत साहित्य पर प्रभाव 41
प्रत्यूष दुबे

उदीयमान भारत में भारतीय संस्कृति की चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ : एक विश्लेषण 47
डॉ. प्रेरणा गौड़

छायावादी काव्य दर्शन 52
डॉ. विजयलक्ष्मी

बाल कहानी और प्रेमचन्द 62
डॉ. सविता कुमारी श्रीवास्तव

हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर 69
डॉ. अमित कुमार ओझा

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में संवेदना और संघर्ष 78
डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव

21वीं सदी की दलित कहानियों में चित्रित स्त्री : समस्याएँ एवं चेतना 82
डॉ. पठान रहीम खान

महादेवी के गद्य साहित्य में शिल्प विधान 178
भावना अग्रवाल

सहजोबाई और उनका सहज प्रकाश 189
डॉ. श्रीहरि त्रिपाठी

महिला सशक्तीकरण और गांधी दर्शन की प्रासंगिकता 196
डॉ. संध्या द्विवेदी

इक्कीसवीं शताब्दी में दादू की प्रासंगिकता 201
डॉ. हरदीप सिंह

लोकधर्मी नाट्य परम्परा और भारतेन्दु 207
मुन्ना कुमार पांडेय

चिम्फौ जनजाति का सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य 213
डॉ. अदिति सैकिया

व्यंग्य भाषा एवं हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में भाषा का स्वरूप 220
डॉ. राजेश चन्द्र पांडेय

बदलते परिवेश में प्रेमचन्द से साक्षात्कार 229
नवीन चन्द पटेल

प्रभा खेतान के काव्य में स्त्री विमर्श 234
डॉ. कमला चौधरी

आषाढ़ का एक दिन—आधुनिक मानव के अन्तर्द्वंद्व की नाटकीय अभिव्यक्ति 243
डॉ. जोतिमय बाग

धार : मैना के संघर्ष का आख्यान 248
डॉ. यशपाल सिंह राठौड़

गोविन्द मिश्र के कथा साहित्य का भाषिक वैशिष्ट्य 255
डॉ. सरिता दुबे

स्त्री-मुक्ति के विविध परिप्रेक्ष्य और चाँद 259
ऋतु शर्मा / डॉ. दीपक कुमार पांडेय

हिन्दी साहित्य के संवर्धन में महायोगी गुरु गोरखनाथ जी की भूमिका 266
विवेक कुमार तिवारी / प्रो. योगेन्द्र प्रताप सिंह

चिम्फौ जनजाति का सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य

डॉ. अदिति सैकिया

चिम्फौ जनजाति असम और अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख जनजाति है। बिलकुल सहज स्वभाव में जीनेवाली यह जनजाति भारत की सांस्कृतिक विविधता की परिचायक है। यह जनजाति असम में विशेष रूप से तिनसुकिया, शिवसागर, जोरहाट और अरुणाचल प्रदेश के चाङलाङ और लोहित में रहती है। इनके अलावा म्याउ, नामचाइ, चोखाम, बरडुमसा आदि में भी वे लोग निवास करते हैं। उत्तर-पूर्व के अलावा म्यांमार, चीन, थाईलैंड आदि में भी ये लोग निवास करते हैं। समय के प्रभाव के कारण इन लोगों का स्थानवाचक नाम भी अलग-अलग हैं। असम में चिम्फौ और चीन में जिम्फौ नाम से जाना जाता है। म्यांमार में इन लोगों को काचिन कहते हैं। 'चिम्फौ' शब्द का अर्थ है 'आदमी'। इस जनजाति के लोग अपने आप को चिमफौ् कहलाने पर गर्व अनुभव करते हैं।

एक किंवदन्ती के अनुसार 'निंगाम वा' नामक एक पुरुष ने एक घड़ियाल से शादी करने के बाद नेक सन्तानों को जन्म दिया। इसके बाद जिन परिस्थितियों का जन्म हुआ उनसे एक-एक जनगोष्ठी की सृष्टि होती है—

1. राम (प्रथम सन्तान): रावां जनगोष्ठी
2. नङ (द्वितीय सन्तान): लिचु जनगोष्ठी
3. ला: (तृतीय सन्तान): मारु जनगोष्ठी
4. दु: (चतुर्थ सन्तान): लाचि जनगोष्ठी
5. टाङ (पंचम सन्तान): जिम्पो जनगोष्ठी या चिम्फौ
6. यङ (षष्ठ सन्तान): आटचि जनगोष्ठी
7. खा: (सप्तम सन्तान): नगा/चिन जनगोष्ठी
8. च'रइ (अष्टम सन्तान): अका/वा जनगोष्ठी

इन सभी का निवास स्थल वर्तमान म्यांमार के मलिखा, इनमाइखा, इनचन खा (सम्भवत: बूढ़ी दिहिंग) और पुंगंखा (ब्रह्मपुत्र से आकर उत्तर वर्मा (काचिन अंचल) और चीन के यूनान अंचल तक विस्तृत है। सम्पूर्ण भारत में आजकल चिम्फौ लोग निवास करते हैं। चिम्फौ लोगों की संख्या वर्तमान में 7,200 है।

तिब्बत से आकर पाटकाइ पर्वत में निवास करनेवाले चिम्फौ लोग मंगोलीय जनगोष्ठी के हैं। चिम्फौ लोगों के कई उपसमूह हैं। मेकेंजी के अनुसार चिम्फौ लोगों के बीच पाँच उपसमूह हैं। टेछान, मिरिप्, लफाए, लुटं और मायरु। विशेष बात यह है कि इन उपसमूहों में जातिगत वैमनस्य नहीं है। सभी लोग सौहार्द एवं स्नेह से रहते हैं। एक-दूसरे के सुख-दुख में भागीदार बनते हैं। तिब्बत-बर्मी भाषा गोष्ठी के चिम्फौ लोगों की अपनी पृथक्-पृथक्

सामाजिक थातियाँ और सांस्कृतिक धरोहरें हैं। इन लोगों की एकता और अखंडता की भावना बौद्ध धर्म के कारण हुई है।

चिम्फौ लोग 'चाङ घर' में रहते हैं। इसका निर्माण ये लोग खुद बाँस, फूस, बेंत, लकड़ी द्वारा कर लेते हैं। इन लोगों के घर का साइज अस्सी से सौ फुट होती है। घास-फूस के छप्पर से बने घर की दीवार बांस को फाड़कर बनाते हैं। घर के सामने का भाग हमेशा खुला रहता है, जहाँ औरतें बैठकर कपड़ा बुनना, धान कूटना आदि काम करती हैं। उन लोगों के घर में एक कमरे से दूसरे कमरे तक जाने के लिए बीच में कारीडोर रहता है। हरेक कमरे में एक चूल्हा रहता है, जो हमेशा जलता रहता है। छत से लटकनेवाले चाङ पर मांस-मछली आदि सुखाते हैं। चिम्फौ लोग प्राय: सामग्री खुद बना लेते हैं। ये अपनी ईमानदारी के लिए मशहूर होते हैं।

चिम्फौ जनजाति के लोग बड़े ही परिश्रमी और कार्यकुशल होते हैं। लेकिन अफीम और मदिरा जैसे भयानक मादक द्रव्य के सेवन की प्रथा ने उन लोगों की शारीरिक और मानसिक शक्ति बहुत कम कर दी। अफीम के अलावा चिम्फौ लोग बीड़ी, पान, चाय आदि का सेवन भी करते हैं। चाय उत्पादन में ये लोग सबसे आगे हैं। निरुलाइ नामक एक चिम्फौ व्यक्ति सर्वप्रथम भारतीय चाय व्यवसायी है। आज भी प्राय: चिम्फौ लोग चाय व्यवसाय में आग्रही हैं, पर परम्परागत पूँजी के अभाव में व्यापार-व्यवसाय में यह सफल नहीं हो रहे हैं। पूर्वोत्तर के सभी जनजातियों की तरह चिम्फौ लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है, जिससे ये लोग अपना जीवन निर्वाह करते हैं। धान इन लोगों की मुख्य खेती है। इसके साथ-साथ मुख्य अन्न भी है। रुचिसम्पन्न चात माकाइ (टोपोला भात) के साथ-साथ बिना तेल से बनाया हुआ व्यंजन खाते हैं। इसके अलावा ज्वार, मक्का की खेती भी प्रचुर मात्रा में करते हैं। फल और सब्जी के साथ-साथ आलू, प्याज, केला, खीरा, लौकी, कुम्हड़ा, कच्चू आदि की उपज चिम्फौ लोगों की आर्थिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। वे लोग काफी जागरूक हैं। मिट्टी की प्रकृति के अनुकूल ये लोग उसमें फसल उगाते हैं। चिम्फौ गाँवों की समूची अर्थव्यवस्था कृषि पर ही आधारित होने के कारण अन्य व्यवसाय भी इन्हीं के इर्द-गिर्द पाए जाते हैं। खेती का ही एक सहयोगी धन्धा पशुपालन है। प्राय: हर कृषक थोड़ी-बहुत भेड़-बकरियाँ और गाय-भैंसे अवश्य रखते हैं। अफीम भक्त चिम्फौ लोग खुद अफीम की खेती करते हैं। शिकार में पारंगत चिम्फौ लोगों का दूसरा महत्त्वपूर्ण शौक है मछली पकड़ना। चिम्फौ समाज में पितृ सत्तात्मक व्यवस्था कायम है। परिवार का मुखिया पिता होता है, लेकिन उन लोगों की सम्पत्ति का वितरण अलग तरीके से होता है। प्राप्त तथ्य के अनुसार परिवार के बड़े बेटे को पिता की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति मिलती है। सबसे छोटे बेटे को घर के अस्थावर सम्पत्ति मिलती है। लेकिन मंझले बेटे को कुछ नहीं मिलता। चिम्फौ औरतों की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं है, फिर भी औरतें इसका व्यवहार खुले हाथ से करती हैं।

चिम्फौ लोगों का नारी समाज बहुत परिश्रमी है। घर की सारी जिम्मेदारियाँ वे अच्छी तरह पालन करती हैं। हस्तकलाओं जैसे कपड़ा बुनना, काटना, काढ़ना आदि में भी चिम्फौ औरतें निपुण होती हैं। उत्तर-पूर्वी भारत की जनसंस्कृति में औरतों को कपड़े बुनने के कार्य में पारंगत होना भी आवश्यक है। खेत-खलिहान के काम से छुट्टी पाने पर चिम्फौ स्त्रियाँ अपने घर में करघे से कपड़े बुनती हैं। नाना प्रकार के रंग-बिरंगे कपड़े बुनने के कार्य में चिम्फौ औरतें पारंगत होती हैं।

कपड़ा बुनना और खेती का कामकाज सँभालने के अलावा जंगल से लकड़ी लाने का काम भी स्त्रियाँ ही करती हैं। सौन्दर्य और रंगों के प्रति चिम्फौ औरतों का आकर्षण उनके पहनावे और साज-सज्जा में झलकता है। स्त्रियों के परिधान में बुकाङ, नूम्बट, सिंकेट, फामबाम, शमफेङ,

बापाइ मुख्य हैं। चिम्फौ स्त्रियों की वेशभूषा बड़ी रंगीन और कलामय होती है। बुकाङ, नूम्बट के रंगों और छपाई की छटा बड़ी मनमोहक होती है। चिम्फौ जनजाति की वेशभूषा न केवल आकर्षक एवं मनमोहन है अपितु, भारतीय संस्कृति की एक अमूल्य विरासत भी है। कानों में लाकान, हाथों में लुखन, गले में जदाङ और खाइचि, अंगुलियों में लकखाप और माथे पर फामबाम आदि चिम्फौ औरतों के आभूषणों में प्रमुख है। औरतें अपना कपड़ा खुद बना लेती हैं।

चिम्फौ पुरुष बाका, पुलङ परिधान पहनने के साथ-साथ 'नाप' (तलवार) और इमफेड (बैग) भी हमेशा अपने साथ रखते हैं। माथे पर ये लोग भी फामबाम बाँधते हैं।

चिम्फौ समाज में बहु स्त्री विवाह प्रचलित है। चिम्फौ पुरुष बहु विवाह कर सकते हैं। चाहे लड़की घर की नौकरानी हो या बड़े घर की लड़की। चिम्फौ समाज में विधवा विवाह प्रचलित है। बड़े भाई की मृत्यु के बाद यदि दोनों की मर्जी हो तो भाभी को अपनी पत्नी स्वीकार कर सकते हैं। चिम्फौ जनजाति में मामा की लड़की से शादी करने का पूर्ण अधिकार दिया जाता है। जिस परिवार के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित होता है उस परिवार के साथ पुरुषानुक्रम से वैवाहिक सम्बन्ध रखने का नियम है। बहिगोत्र विवाह पद्धति में वे लोग विश्वास नहीं रखते हैं। विवाह के लिए वधू-मूल्य देने की परम्परा बहुत पहले से है। इस प्रथा के अन्तर्गत वधू-मूल्य के रूप में नगद राशि, धान, पशु, जेवर दिए जाते हैं। इसके साथ-साथ छुरा जैसे हथियार भी देते हैं।

उत्सव-पर्व

उत्तर-पूर्व में विशेष रूप से असम तथा अरुणाचल में निवास करनेवाले चिम्फौ लोगों की मौलिक संस्कृति तथा अपनी पहचान होती है। चिम्फौ लोग जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त विभिन्न लोककथाएँ, संगीत कलाएँ, धार्मिक आस्थाएँ, किंवदन्तियाँ आदि विविध परम्पराओं से परिचालित होते हैं। उत्तर-पूर्वी अन्य जनजातियों की तरह चिम्फौ लोगों के उत्सव-पर्व भी मुख्य रूप से कृषि से सम्बन्धित होते हैं। फसल की बुआई, कटाई से पहले या बाद में ये उत्सव मनाए जाते हैं। नृत्य और संगीत प्रेमी चिम्फौ लोग विभिन्न उत्सव अपने विशेष रीतियों के साथ धूमधाम से मनाते हैं। चिम्फौ लोगों के समाज में उत्सवों का आयोजन युगों से होता चला आया है। ये लोग अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त परम्पराओं को अपनाते हुए ये पर्व पालन करते हैं। चिम्फौ लोगों के उत्सवों के सन्दर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है सामूहिक भागीदारी। युवा-वृद्ध तथा मर्द-औरतें सब इसमें भाग लेते हैं। चिम्फौ लोगों का अपना कोई मन्दिर या पूजा स्थल नहीं है। सब लोग खुले आकाश के नीचे ये उत्सव मनाते हैं। चिम्फौ लोग प्रायः बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। जन्म-मृत्यु, विवाह से सम्बन्धित अनेक विधि-विधान, पूजा-पाठ, मंत्र, बलि आदि की परम्परा अधिक मात्रा में चिम्फौ जनजाति में देखने को मिलती है। धर्म के प्रति आस्थावान चिम्फौ जनजाति की अपनी सांस्कृतिक धरोहर है। धर्म के प्रति विश्वासी चिम्फौ लोग बौद्ध धर्म के अनुसार उत्सव-पर्व का पालन करते हैं।

पय चांकेन

चिम्फौ जनजाति के सर्वप्रमुख धार्मिक उत्सव है 'पय चांकेन'। चिम्फौ सगरत (कैलेंडर) के अनुसार तीन दिन तक यह उत्सव मनाते हैं। संगफा बुद्ध मूर्ति को बौद्ध विहार से लाने के बाद बाँस से निर्मित नौका में पानी डालकर साफ करते हैं। साफ करने के बाद हर सुबह युवक

और बूढ़े सब मिलकर उस मूर्ति पर पानी डालकर, फूल चढ़ाकर और मोमबत्ती जलाकर लोगों की शान्ति के लिए पूजा पाठ करते हैं।

नवासंग अथवा नोवा सितांग

यह उत्सव वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में पूर्णिमा के दिन मनाते हैं। बुद्ध द्वारा दिखाए गए सही राह को याद करने के लिए यह उत्सव मनाया जाता है। उत्सव के दिन गाँववासी मोमबत्ती जलाकर उपास्य देवता के नाम पर फल-फूल चढ़ाते हैं।

सारे सितांग

यह उत्सव आश्विन महीने (सितम्बर-अक्टूबर) की पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस उत्सव में भूखे लोगों को खाना खिलाते हैं, वे लोग इस जनम में नहीं, अगले जनम में भी सुखी रहते हैं। इस उत्सव में खाद्य और फल बौद्ध भिक्षुक को दान देते हैं।

पय लोग

गौतम बुद्ध की मृत्यु के बाद से ही यह उत्सव मनाया जाता है। इसके लिए कोई अच्छा दिन नहीं है। सबके सुविधानुसार दिन स्थिर करके सामूहिक भागीदारी से यह उत्सव मनाया जाता है। दूर-दूर रहने वाले सभी चिम्फौ लोग आकर इस उत्सव में भाग लेकर बुद्ध के प्रति श्रद्धा अर्पित करते हैं।

कांड पय

इस उत्सव में संघ की उन्नति के लिए सब एक साथ मिलकर प्रार्थना करते हैं। यह प्रत्येक गाँववासी के लिए आवश्यक है कि वह प्रधान भिक्षु के प्रति श्रद्धा ज्ञापन करने के लिए यह उत्सव मनावें। इनके अलावा और अनेक उत्सव चिम्फौ लोग बौद्ध धर्मानुसार पालन करते हैं। चिम्फौ लोगों का जातीय उत्सव है—'स्वपंयङ मानाउ पय'।

स्वपंयङ मानाउ पय

चिम्फौ लोगों का जातीय उत्सव स्वपंयङ मानाउ पय बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस उत्सव में एक ओर तो आनन्द और हर्ष की वर्षा होती है, दूसरी ओर प्रेम और स्नेह की सरिता उमड़ पड़ती है। इस शुभ पर्व का पालन प्रतिवर्ष उत्तर-पूर्वी अरुणाचल और असम के सभी चिम्फौ लोग एक साथ मिलकर फरवरी महीने की 14 तारीख को करते हैं। सन् 1985 ई. में सर्वप्रथम यह उत्सव अरुणाचल प्रदेश के म्याउ (चाङलाङ)में मनाया गया था। तब से यह परम्परा चल रही है।

जनश्रुति के अनुसार स्वपंयङ चिम्फौ लोगों के आदि पुरुष थे। टिंलियङ के पिता थे स्वपंयङ। टिंलियङ अपने पिता स्वपंयङ और विश्व के सृष्टिकर्त्ता परमपिता माटुम माठा से आशीष पाने के लिए चिकनगुन्दन पर यह गुणानुकीर्त्तन उत्सव पालन करते थे। कालक्रम

में यह उत्सव पूर्वपुरुष स्वपंयङ की स्मृति रक्षार्थ पालन करते हैं। चिम्फौ भाषा में 'मानाउ' का अर्थ है नृत्य और 'पय' का अर्थ है उत्सव। यह जातीय उत्सव शुरू होता है उत्सव के प्रतीक 'स्वादुं' की प्रतिष्ठा से। उत्सव के पहले उत्सव स्थल अच्छी तरह सजाते हैं। स्वादुं के आमने-सामने एक चिम्फौ जनगोष्ठी के परम्परागत घर 'मानाउ थिंगनु' बनाते हैं। जहाँ अतिथिगण बैठकर गीत गाते हैं। कहानी सुनते हैं। कुछ समय के लिए लोग अपने आपको भुला देते हैं। दिन-रात इस उत्सव का आनन्द नृत्य-गीत के जरिए चलता रहता है। बच्चे-बूढ़े, मर्द-औरतें सभी यह उत्सव बड़े आनन्द से मनाते हैं। 'स्वादुं' प्रतिष्ठा की शुरुआत गिथिंग गुमदिन मानाउ से होती है। इसके बाद पादं मानाउ, शुत मानाउ आदि नृत्य करते हैं। नृत्य करने वाले हाथ में वृक्ष के पत्ते लेकर नाचते हैं। नाचते समय चिम्फौ लोग जो कपड़ा पहनते हैं उन्हें 'थिङहिकरिङ पोशाक' कहते हैं। इसके साथ पारम्परिक मूल्यवान गहने भी पहनते हैं। नृत्य करते समय चिङ/थङ, गंग, पि और थङजिमेन आदि वाद्य बजाते हैं।

पहले यह उत्सव विविध बलि-विधान और मादक द्रव्य सेवन से ही पालन करते थे। स्वादुङ के आगे परमपिता को सन्तुष्ट करने के लिए भैंसे की बलि चढ़ाते हैं। वर्तमान असम और अरुणाचल प्रदेश में निवास करनेवाले चिम्फौ लोग बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। इसलिए बलि विधान को छोड़ देते हैं। इस उत्सव में स्वपंयङ को स्मरण करने के साथ-साथ परमपिता माटुम माठा की कृपादृष्टि प्राप्त करते हैं। आजकल यह उत्सव पूर्वपुरुष स्वपंयङ को स्मरण करना ही नहीं, जातीय जीवन के प्रयोजनीय सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक आदि सभी दिशाओं के बारे में भी इस पर्व में आलोचना होती है।

चिम्फौ लोगों के लोक नृत्य

प्रत्येक जाति के परम्परागत कुछ नृत्यशैली हैं, जिन्हें लोक नृत्य कहते हैं। चिम्फौ लोगों का अपना लोक नृत्य है। ये लोग नृत्य और संगीत में भी माहिर होते हैं। चिम्फौ लोगों के मानाउ की सृष्टि के बारे में लोगों का विश्वास है कि विश्व के सृष्टिकर्त्ता 'माटुम माठा' ने इस धरती को वृक्ष-लता, फल-फूल आदि से पूर्ण किया था। 'माटुम माठा' के अमूल्य दान की स्वीकृति स्वरूप आनन्द में आत्महारा होकर फल-फूल का स्वाद पाने के लिए धनेश पक्षी के नेतृत्व में एक नृत्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बाद में इसके जरिये चिम्फौ लोगों ने नृत्य करना सीखा। चिम्फौ लोगों के मानाउ यानी नृत्य आठ प्रकार के हैं।

चिमानाउ

चिम्फौ जनजाति लोगों की मृत्यु के बाद शव दाह करने से पहले चि मानाउ करते हैं। उन लोगों का विश्वास है कि मृत्यु के बाद मृतक को आनन्द से विदा करना चाहिए। इसलिए लोग कुछ समय के लिए सारा दुःख-दर्द भुलाकर 'चि मानाउ' के जरिये अन्तिम श्रद्धा ज्ञापन करते हैं।

पादां मानाउ

जब कोई व्यक्ति अमीर बन जाता है, तब खुशी से अधीर होकर अनेक लोगों के साथ चुत्त नृत्य करते हैं। समवेत लोगों को खाना खिलाना ही इस नृत्य की सार्थकता समझते हैं।

डुम मानाउ

अतिथि परायण चिम्फौ लोग मेहमान आने की खुशी में डुम मानाउ करते हैं। घर के सब लोगों के साथ अतिथि भी नृत्य करते हैं।

कोमरान मानाउ

आनुष्ठानिक रूप से लोगों को विदा करना चिम्फौ लोगों की पारम्परिक रीति है। परिचित लोगों को विदा करते समय सामूहिक रूप से कोमरान मानाउ करते हैं। एक-दूसरे को न भूलने की प्रतिश्रुति से यह नृत्य करते हैं।

जु मानाउ

चिम्फौ लोग उपास्य देवता को सन्तुष्ट करने के लिए 'जु मानाउ' करते हैं। लोगों का विश्वास है कि यह नृत्य करने से देवता सन्तुष्ट होता है। इस नृत्य के साथ आध्यात्मिक भाव स्पष्ट होता है।

थंका मानाउ

कृषिजीवी चिम्फौ जनजाति खेती का काम समाप्त होने के बाद 'थंका मानाउ' करते हैं। फसल घर में लाने के बाद लोग आनन्दित होकर यह नृत्य करते हैं।

कोमराल मानाउ

बहुत दिनों के बाद आत्मीय जनों के मिलने की खुशी में चिम्फौ लोग कोमराल मानाउ करते हैं। नृत्य करते समय खुशी के आँसू अतीत की मधुर स्मृति को याद दिलाते हैं।

चिम्फौ लोगों के ये नृत्य चिम्फौ संस्कृति की एक अमूल्य धरोहर एवं बेजोड़ मिसाल है। चिङ (ढोल) पि (बंशी) बाँउ (बहकाह) आदि वाद्य यंत्र चिम्फौ समाज का प्रमुख वाद्य यंत्र है। इस नृत्य के जरिये एक ओर आनन्द और हर्ष की वर्षा होती है तो दूसरी ओर प्रेम और स्नेह की सरिता उमड़ पड़ती है। इन नृत्यों में युवक-युवतियों के साथ-साथ बच्चे-बूढ़े, मर्द-औरत सभी भाग लेते हैं। अपनी पारम्परिक वेशभूषा में नृत्य करने वाली चिम्फौ औरतें ऐसी लगती हैं मानो सुन्दर परियाँ धरती पर उतर आई हों।

चिम्फौ जनजाति के लोकगीत

चिम्फौ समाज में दूसरी जनजातियों की तरह अनेक लोकगीत प्रचलित हैं। चिम्फौ लोकगीतों में भी उन लोगों की व्यथा-कथाएँ हैं तथा उन लोगों की संवेदनाएँ हैं। इनके लोकगीतों में मामथु, चयबा, चियग इ निंकिन, खायं निंकिन आदि प्रमुख हैं। कृषि जीवी चिम्फौ जनजाति की औरतें धान कूटते समय मामथु चयबा गीत गाती हैं। चिम्फौ नारियों के हृदय की करुण गाथा इन गीतों के माध्यम से स्पष्ट होती है। धान कूटते-कूटते मध्य रात तक भी ये गीत गाती हैं।

चियग इ गीतों में प्रणय, दुख, प्रकृति, वस्तु या व्यक्ति का वर्णन रहता है। प्रेम-प्रणय, प्रकृति का आनन्द सौन्दर्य एक व्यक्ति का जीवन वृत्तान्त आदि का वर्णन इन गीतों में है। इसके अलावा नाव चलाते समय अपने आप से जो गीत मुख से निकलते हैं, वही है खायं निंकिन। गन्तव्य तक नहीं पहुँचने तक शायद चिम्फौ लोग ये गीत गाते हैं। कोई इतिहास या कोई किंवदन्ती का वर्णन भी इन गीतों में मिलता है। आजकल आधुनिकता के प्रभाव से इन गीतों में थोड़ा सा परिवर्तन आया है। गीतों की चर्चा भी कम हो रही है। चिम्फौ लोगों को यह ध्यान रखना चाहिए कि लोकसाहित्य, लोकगीत, लोकनृत्य आदि के अभाव में जाति का भविष्य उज्ज्वल नहीं है। लोकगीतों के संरक्षण की जरूरत है। क्योंकि लोकगीतों में इतनी क्षमता होती है कि वे सूखे से सूखे दिलों में भी प्रेम और करुणा का संचार कर देते हैं। आधुनिक परिवेश से प्रभावित चिम्फौ समाज अपने गौरवमयी लोक गीतों के प्रति उदासीन हो रहा है।

अत: हम कह सकते हैं कि चिम्फौ समाज और संस्कृति में विविधता में एकता हैं। पाश्चात्य प्रभाव ने चिम्फौ लोगों को पुरानी मान्यताओं रीति-रिवाजों तथा मूल्यों को गहराई तक प्रभावित किया है। इसका प्रभाव चिम्फौ लोगों के रहन-सहन तथा वेशभूषा पर भी पड़ा है। वर्तमान में हो रहे नगरीय सभ्यता के प्रभाव से कोई भी चिम्फौ गाँव अछूता नहीं है।

पहले चिम्फौ लोग शहरी चमक-दमक से दूर घने जंगल में रहना अधिक पसन्द करते थे। लेकिन आजकल इन लोगों में अधिक परिवर्तन हो रहा है। वर्तमान में द्रुत गति से हो रही प्रगति के कारण चिम्फौ लोग अपने मूल पेशे को छोड़कर व्यवसाय, उच्च नौकरी और अन्यान्य नए पेशे की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
मनोहारी देवी कनई महिला महाविद्यालय
डिब्रूगढ़, असम

सन्दर्भ

1. *असमर जनजाति*—सम्पादक डॉ. प्रमोद चन्द्र भट्टाचार्य, तीसरा संस्करण, 2004, किरण प्रकाशन, धेमाजी।
2. *चिम्फौ : समाज और संस्कृति*—राजीव निंखो, द्वितीय संस्करण, 2012, लिङ् शाखा साहित्य सभा।
3. *चिम्फौ जनगोष्ठी :* सर्वानन्द राजकुमार—असम साहित्य सभा प्रकाशन।
4. शदियार बुरंजी—भवानन्द बूढ़ागोहाई, प्रथम प्रकाशन, 1983।
5. *Souvenir* – Bordumsa, Changlang District,Arunachal Pradesh, February, 2011
6. *A phase of book in Singpho* – B. Dasgupta, First Edition 1979
7. *The Singpho* – Paul Dutta, First Edition 1980

ISSN 2581-8589

नागरी संगम

(आचार्य विनोबा भावे की सत्प्रेरणा से स्थापित नागरी लिपि परिषद् की मुख-पत्रिका)

वर्ष 44 अंक 177 अक्टुबर-दिसम्बर 2022 मूल्य : 20 रु

45 वाँ अखिल भारतीय नागरी लिपि सम्मेलन, विशेषांक

आज़ादी का अमृत महोत्सव

45वा अखिल भारतीय नागरी लिपि सम्मेलन, 2022, असम

आयोजक: नागरी लिपि परिषद, दिल्ली और तेंगाखात कॉलेज के संयुक्त तत्वावधान में

नागरी लिपि परिषद्
19, गांधी स्मारक निधि, नई दिल्ली-110002

आई.एस.एस.एन. 2581-8589

केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
के आंशिक आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

नागरी-संगम

(वर्ष 44, अंक 177, अक्टूबर-दिसम्बर 2022)

45वाँ अखिल भारतीय नागरी लिपि सम्मेलन, विशेषांक

संरक्षक मण्डल

पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह शशि • पद्मश्री डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी • बलदेव राज कामराह

अध्यक्ष संपादक मण्डल

डॉ. प्रेमचंद पतंजलि • डॉ. शहाबुद्दीन नियाज मोहम्मद शेख

अतिथि संपादक

डॉ. किरण हजारिका

प्राचार्य, तेंगाखात कॉलेज, डिब्रूगढ़ (असम)

सह-संपादक

आचार्य ओमप्रकाश • उमाकांत खुवालकर

प्रधान संपादक

डॉ. हरिसिंह पाल

मो. : 9810981398, मेल : drharisinghpal7@gmail.com

कार्यालय

नागरी लिपि परिषद्

19, गांधी स्मारक निधि, नई दिल्ली-110002

संपर्क : 9868888777, 9850119687, 9810360675

email: nagarilipiparishad1975@gmail.com

वार्षिक सदस्यता शुल्क : ₹ 250/- (₹ 100 छात्रों के लिए)

आजीवन सदस्यता शुल्क : ₹ 2000/- (विदेश के लिए $ 25 डॉलर)

विषयानुक्रमणिका

1.	संपादकीय	–डॉ. हरिसिंह पाल	03
2.	अतिथि संपादकीय	–डॉ. किरण हजारिका	04
3.	नागरी लिपि का गौरव गान	–डॉ. रश्मि चौबे	05
4.	संदेश गीत	–डॉ. ब्रजपाल सिंह संत	05
5.	विश्व लिपि के रूप में नागरी लिपि	–डॉ. राजलक्ष्मी कृष्णन	06
6.	पूर्वोत्तर भारत में नागरी लिपि की स्थिति एवं संभावनाएँ	–डॉ. अदिति सैकिया	08
7.	राष्ट्रीय एकता में नागरी लिपि की भूमिका	–प्रो.डॉ. प्रतिभा जी येरेकार	11
8.	मणिपुर की जनजातीय बोली में नागरी लिपि की संभावनाएँ	–सुश्री थोकचोम मोनिका देवी	14
9.	संस्मरण लेख–असम डायरी के पन्ने	–चितरंजन भारती	16
10.	प्रतिवेदन– 45वाँ अखिल भारतीय नागरी लिपि सम्मेलन	–प्रस्तुति : डॉ. चिन्मय डेका आचार्य ओमप्रकाश, उमाकांत खुबालकर, डॉ. शहाबुद्दीन शेख, डॉ. बंदना भारती	20
11.	आंतर भारती (असमिया)– दुहिता	मूल : नीति बरुआ, *अनुवादक* : रत्नेश कुमार	39
12.	समाचारों पत्रों से		40
13.	पुस्तक परिचय– सार्थक लिपि : नागरी लिपि	लेखक : ऐनूर शब्बीर शेख	41
14.	परिषद की गतिविधियाँ		42
15.	महासभा की बैठक		42
16.	संस्था-समाचार		43
17.	सम्मेलन के प्रतिभागीगण		44
18.	नए साथी (आजीवन सदस्य)		47
19.	अखिल भारतीय नागरी लिपि शोध निबंध एवं पत्र लेखन प्रतियोगिता : 20022–23		48

इन लेखों में व्यक्त लेखकों के अपने विचार हैं। इनसे संपादक मंडल अथवा नागरी लिपि परिषद् का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

45वें अखिल भारतीय नागरी लिपि सम्मेलन, असम में प्रस्तुत आलेख

पूर्वोत्तर भारत में नागरी लिपि की स्थिति एवं संभावनाएँ

✍ डॉ. अदिति सैकिया (डिब्रूगढ़, असम)

पूर्वोत्तर में निवास करने वाले विभिन्न जनजातियों की मौलिक संस्कृति तथा अपनी पहचान होती है, लेकिन सबकी भाषाएँ अलग-अलग हैं। सभी भाषाओं के पारम्परिक मौखिक साहित्य जैसे–लोककथा, लोकगीत, लोकनाट्य आदि से समृद्ध हैं, यद्यपि पूर्वोत्तर की जनजातियों की अपनी-अपनी भाषा है, लेकिन उसे प्रकाशित करने के लिए सबकी अपनी लिपियाँ नहीं हैं। इसलिए अपनी-अपनी विशिष्टताओं के कारण अन्य जनजातियों के लिए बोधगम्य नहीं होती है।

भारत के पूर्वोत्तर में अवस्थित असम जनजाति प्रधान प्रदेश है। वर्तमान असम में विशेष रूप से बोडो, राभा, डिमासा, लालुङ या तिवा, तिपरा, सोनोवाल कहारी, मिकिर या कार्बी, मिरि या मिसिङ और देउरी चुतीया आदि अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं। जिनकी अपनी-अपनी भाषा-संस्कृति हैं, अनेक जातियों तथा जनजातियों का संगम स्थल असम की प्रमुख भाषा असमिया है। असमिया भाषा की अपनी लिपि है। यह लिपि पूर्वी नागरी का एक रूप है जो ब्राह्मी परिवार की लिपि है। इसमें मुख्यत: असमिया, बांग्ला और विष्णुपुरिया मणिपुरी भाषाएँ लिखी जाती हैं। असम की जनजातियों में बोडो जनगोष्ठी प्रधान और उल्लेखनीय है। बोडो जनजातियों के बोडो, राभा, डिमासा, तिबा आदि कई उपशाखाएँ हैं। आजकल बोडो भाषा नागरी लिपि में लिखी जाती है। सन् 1975 ई. में बोडो भाषा के लिए नागरी लिपि स्वीकृत हुई है। इसके बाद 2003 ई. में 92वें सविधान संशोधन अधिनियम द्वारा बोडो भाषा को आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। इनके अलावा असम में तिवा, देओरी, मिसिंग, कार्बी कामरूपी, कनशरी आदि अनेक लिपिविहीन बोलियाँ तथा भाषाएँ हैं।

सूबसूरत वादियों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से सुशोभित उत्तर-पूर्वी राज्य अरुणाचल में प्राय: 126 जनजातियाँ तथा उपजातियाँ बसती हैं। यहाँ की ज्यादातर बोलियों की अपनी लिपि नहीं है, मोनपा, आदि, निशि, नोक्टे, वान्चो, मिशिङ तङ्सा आदि अधिकांश भाषाएँ तिब्बती-बर्मी परिवार की हैं। पूर्वोत्तर आठों राज्यों में सबसे बड़ा राज्य अरुणाचल की आधिकारिक भाषा अंग्रेजी (रोमन लिपि) है। वर्तमान अरुणाचल प्रदेश की बोलचाल की मुख्य भाषा हिंदी है। कुछ विद्वानों तथा संस्थाओं के प्रयत्न से हिंदी भाषा और नागरी लिपि का प्रचलन बढ़ रहा है।

संवेदनशील सीमावर्ती राज्य के रूप में परिचित पूर्वोत्तर के खूबसूरत एक और राज्य है मणिपुर। अनेक जनजातियों के निवास क्षेत्र मणिपुर की प्रमुख जनजाति है मेइती। इनके अलावा लोऊ, मिथाबी, धोबी, मूची या रबीदास, पत्नी, सूत्रधार, नामशूद्र आदि अनुसूचित जाति के लोग निवास करते हैं। मणिपुर में 30 जनजातियाँ निवास करती हैं। जिस प्रकार असम की भाषा असमिया है उसी प्रकार मणिपुर की मुख्य भाषा मणिपुरी है, इस भाषा की अपनी लिपि है– 'मैतेई मायेक' तथा पूर्वी नागरी लिपि मणिपुरी भाषा की लिपि है।

अनूठी प्राकृतिक सुन्दरता से सुशोभित पूर्वोत्तर राज्य मेघालय को 'पहाड़ी कन्या' नाम से अभिहित किया जाता है। मेघालय में विशेष से तीन जनजातियाँ गारो, जयन्तीया और खासी रहते हैं। इन लोगों की अपनी-अपनी भाषा है। लेकिन इनकी अपनी लिपि नहीं है। यद्यपि मेघालय की आधिकारिक भाषा अंग्रेजी (रोमन लिपि) है, फिर भी लोग बोलचाल में खासी, गारो, हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं।

पूर्वोत्तर में निवास करने वाले विभिन्न जनजातियों के संगम स्थल मिजोरम एक सुन्दर राज्य है। यहाँ की मुख्य भाषा 'मिजो भाषा' है। मिजो भाषा और अंग्रेजी भाषा यहाँ की राजभाषा है।

बहुभाषा-भाषियों, जाति-उपजातियों के प्रदेश नागालैंड में सबसे अधिक बोली जाने वाली नागामीज भाषा विभिन्न नागा बोलियों और असमिया भाषा का मिश्रण है। नागामीज की अपनी कोई लिपि नहीं है। नागा समूह की भाषाएँ रोमन लिपि में लिखी जाती हैं। अंग्रेजी नागालैंड की आधिकारिक भाषा है। खुशी की बात यह है कि **धीरे-धीरे आओ, अंगामी आदि जनभाषाओं के बोलने वाले नागरी लिपि को अपना रहे हैं।**

त्रिपुरी, देववर्मा, जमातिया, नोआतिया, कोलाई, मुरासिंग, चकमा, रियांग, रूपिनी, उचोई, हलम, गारो, मुंडा, उरांव, कुकी, संथाल आदि जनजातियों के निवास स्थल त्रिपुरा उत्तर पूर्व भारत का एक सुन्दर छोटा सा राज्य है। मैदानी और पहाड़ी क्षेत्र त्रिपुरा में इन आदिवासी समुदायों के साथ-साथ बंगाली, मणिपुरी आदि लोग भी निवास करते हैं। पूर्वोत्तर के बाकी राज्यों की तरह भाषायी और सांस्कृतिक विविधता इस अंचल के लोगों की अमूल्य धरोहर है। सब समुदायों की अपनी-अपनी भाषाएँ हैं, लेकिन त्रिपुरा की मुख्य भाषाएँ हैं–बंगाली और कोकबोरोक। कोकबोरोक की लिपि को 'कोलोमा' के नाम से जाना जाता था। त्रिपुरा की राजभाषा है–बंगाली, अंग्रेजी और कोकबोरोक। **त्रिपुरा के लोग भी आजकल बोलचाल की भाषा के रूप में नागरी लिपि (हिंदी) को अपना रहे हैं।** कोकबोरोक साहित्य में बहुत बड़े-बड़े विद्वान सृजन कार्य कर रहे हैं।

खूबसूरत ऊँचे-ऊँचे बर्फीले पहाड़ों से घिरे हुए पूर्वोत्तर में सबसे छोटा राज्य सिक्किम की मुख्य भाषा नेपाली है। इनके अलावा यहाँ के जनजाति लोग भूटिया, जोंखा, ग्रेझा, गुरुंग, लेपचा, लिम्बु, मगर, माझी, मझवार, दनुवार, शेरपा, सुनवार भाषा भी बोलते हैं। यहाँ के कुछ भाषाओं की अपनी लिपि है। नेपाली भाषा नागरी लिपि में लिखी जाती है।

उपर्युक्त वर्णनों से यह प्रतीत होता है कि पूर्वोत्तर भारत में अनेक जनजातीय बोलियों तथा भाषाओं का प्रयोग होता है, जो अपनी-अपनी विशिष्टताओं के कारण एक-दूसरे के लिए बोधगम्य नहीं होती हैं। सभी भाषाओं में नवीन सृजन हो रहे हैं। अनेक कवि साहित्यकार, नाट्यकार, उपन्यासकार अपने-अपने साहित्य सृजन में व्यस्त हैं। अब सभी भाषाओं के साहित्यिक विधाओं को विकास के शिखर तक पहुँचाने के लिए एक वैज्ञानिक लिपि आवश्यकता है। आधुनिक समय की वैज्ञानिक लिपि नागरी है। इसकी विशेषता है–जैसा लिखना, वैसा पढ़ना। यह लिपि बाई ओर से दाहिनी ओर लिखी जाती है। वर्ण संकेतों की अल्पता इस लिपि में नहीं है। इनके अलावा और कई विशेषताएँ हैं जिनके कारण यह उत्तम लिपि के रूप में परिगणित हुई है। नागरी लिपि के प्रचार और उपयोगिता को जन-जन में प्रचार करने के लिए 1975 ई. में नई दिल्ली में 'नागरी लिपि परिषद्' की स्थापना हुई। आचार्य विनोबा भावे के सद प्रयासों से स्थापित यह परिषद् नागरी लिपि को समग्र भारतवर्ष की सम्पर्क लिपि के रूप में प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक कार्य कर रहे हैं। भारतवर्ष की सभी भाषाओं द्वारा नागरी लिपि को स्वीकार करने की बात

आचार्य विनोबा भावे, महर्षि दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी, मुहम्मद करीम छागला, असम के विनेश्वर ब्रह्म आदि महान विद्वानों बहुत बार की। इन सभी का मानना था कि एक सर्वमान्य लिपि स्वीकार करने से भारत की विभिन्न भाषाओं में जो ज्ञान का भण्डार भरा है, उसे प्राप्त करने का एक साधारण व्यक्ति को सहज ही अवसर प्राप्त होगा। हमारे लिए यदि कोई सर्वमान्य लिपि स्वीकार करना संभव है तो वह है नागरी लिपि।

यदि पूर्वोत्तर में नागरी लिपि की स्थिति पर विचार किया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि पूर्वोत्तर में देवनागरी लिपि निरन्तर विकसित हो रही है। यहाँ के बहुत आदिवासी समुदायों ने अपनी बोलियों की लिपियों को देवनागरी लिपि में बदल दिया है। उदाहरण के तौर पर देखा जाय तो बोडो, निशि, आपतानी, आओ, आगामी आदि भाषाओं ने नागरी लिपि को अपनाया है। आजकल पूर्वोत्तर के राज्यों से ऐसे कई पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं जिसके जरिए इन राज्यों के लेखक अपने-अपने राज्य में प्रचलित लोकनाटयों, लोककथाओं और लोकगीतों को देवनागरी लिपि हिंदी में अनुवाद कर रहे हैं। अतः पूर्वोत्तरीय लेखक अपने-अपने राज्य की जनभाषा को नागरी लिपि में लिखने के अभ्यस्त हो रहे हैं। पूर्वोत्तर भारत में नागरी लिपि जानने और सीखने वालों की संख्या बढ़ रही है। और हमें आशा है यह संस्था और अधिक बढ़ती ही जाएगी। समग्र पूर्वोत्तर में नागरी लिपि का प्रयोग पूर्ण रूप से करने के लिए नागरी लिपि परिषद् के और अनेक केन्द्र स्थापित करने होंगे। उन केंद्रों के जरिए अधिक सफलता प्राप्त होगी।

अतः निष्कर्षरूपेण कहा जा सकता है कि आठों राज्यों की आधिकारिक भाषाओं को **देश की एकता को बरकरार रखने के लिए देवनागरी लिपि अपनाना चाहिए।** यह भी सच है कि किसी भी भाषाओं पर किसी भी लिपि हम थोप नहीं सकते हैं। यदि हमें नागरी लिपि का प्रयोग अधिक भाषाओं में कराना है तो इसके लिए लोगों को नागरी लिपि की सरलता, वैज्ञानिकता आदि गुण तथा उपयोगिता की जानकारी देना जरूरी है। अवश्य लोगों के मन में यही भाव पैदा करने के लिए इन राज्यों में नागरी लिपि परिषद् (दिल्ली) संगोष्ठी, सम्मेलन, पत्रिका प्रकाशन आदि कार्य कर रहे हैं। पूर्वोत्तर के निवासियों से भी यह आग्रह है कि अपनी लिपि को सम्भालते हुए उनकी सह लिपि के रूप में नागरी लिपि अपनाने से सामाजिक, सांस्कृतिक आदि संकीर्णता दूर हो सकते हैं। आठों राज्यों के सभी भाषाओं को स्थिरता यदि प्राप्त कराना है या अपनी-अपनी भाषाओं में लिखित सामग्री विश्व में प्रचार करानी है, तो वैज्ञानिक लिपि नागरी को अपनाना चाहिए। इसके लिए नागरी लिपि प्रेमियों को अनेक तरह के दायित्व का निर्वाह करना है। अन्त में हम कह सकते हैं कि पूर्वोत्तर में नागरी लिपि का भविष्य उज्ज्वल है तथा आने वाले समय में नागरी लिपि का व्यापक क्षेत्र में प्रयोग एवं प्रसार होने की भी संभावना है।

संदर्भ ग्रन्थ–

1. पूर्वांचल की ओर–मधुकर दिघे; प्रथम संस्करण
2. असमिया प्राचीन लिपि–सबंश्वर कटकी; 2003
3. चिन्तन : विविध आयाम–डॉ. अदिति सैकिया
4. भारतीय प्राचीन लिपि माला–गौरीशंकर हीराचंद ओझा; तृतीय संस्करण, 1971

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग, मनोहारी देवी कनोई महिला महाविद्यालय (डिब्रूगढ़, असम)

केरल ज्योति

नवंबर 2023

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

केरल हिंदी प्रचार सभा
तिरुवनंतपुरम

ISO 9001: 2015

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो.(डॉ). एन.रवींद्रनाथ

डॉ. के.एम. मालती

प्रो.(डॉ.) आर. जयचन्द्रन

प्रो.(डॉ). जयश्री.एस.आर

परामर्श मंडल

डॉ.तंकमणि अम्मा एस

डॉ.लता पी

डॉ. रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

सदानन्दन जी

मुरलीधरन.पी.पी.

प्रो.रमणी वी एन

चन्द्रिका कुमारी एस

एल्सी सामुवल

आनन्द कुमार आर एल

प्रभन जे एस

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पृष्ठ : 60 दल : 8 अंक: नवंबर 2023

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

बकरी कौन चराएगा (पुस्तक समीक्षा) - **गोपकुमार एस** 6

स्त्री की जागृति की गाथा-शेषयात्रा - **डॉ.शैलजा.के** 8

जिंदगी 50 50 में तृतीय लिंगी विमर्श - **डॉ.नीरजा.वी.एस** 11

'उधार' में प्रकृति की उदारता - **डॉ. उषा कुमारी.जे.बी.** 14

अभिशप्तता से आत्मविश्वास की ओर
(सुशीला टाकभौरे की रचनाओं की ओर से एक यात्रा)
डॉ. पूर्णिमा.आर 16

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास में वृद्ध जीवन : 'गिलिगडु' और 'दौड' के विशेष संदर्भ में - **सुरभि.एस.** 20

विस्थापन की त्रासदी : 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान'
हिमा.एम.एन. 24

नारी विद्रोह एवं स्त्री चेतना - 'कठगुलाब' के संदर्भ में
डॉ. प्रिया रानी.पी.एस 28

'गोल गोल घूमती एक नाँव' में परिवेश अंकन
डॉ. लालीमोल वर्गीस.पी 30

संतमत एवं शांति का मार्ग - **डॉ. प्रिय रंजन** 32

नदी का नसीब (पुस्तक समीक्षा) **आनंदकुमार. आर.एल.** 35

हिंदी सूफ़ी काव्य में समरसता - **डॉ.सुजित.एन.तंपी** 36

तीसरा आदमी उपन्यास में स्त्री का मनोवैज्ञानिक पक्ष - **गीतु दास** 39

नवजागरण के विशेष संदर्भ में चण्डाल भिक्षुकी और दुरवस्था -
एक विश्लेषण - **डॉ.बिंदु.एम.जी.** 42

मोहन राकेश के नाटक में आधुनिकता बोध - **डॉ.अदिति सैकिया** 46

दलित विमर्श : 'घासवाली' नाट्यरूपांतर के विशेष संदर्भ में
- **वीणा.एस.कुमार** 49

कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों में नारी संकल्पना-**डॉ.श्रीकला.एस.आर** 51

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 53

मुखचित्र : बिना चुनाव प्रक्रिया के चुने गये नव-निर्वाचित केरल हिन्दी प्रचार सभा के मंत्री डॉ.मधु बी.

मोहन राकेश के नाटक में आधुनिकता बोध

डॉ.अदिति सैकिया

आधुनिकता बोध आगे आनेवाले साहित्य के विकास का पूर्वाभास है। इस नवीन राहों का अन्वेषणकारी हिन्दी साहित्यकारों में मोहन राकेश का स्थान महत्वपूर्ण है। मोहन राकेश एक युगान्तकारी नाटककार हैं। जिन्होंने आषाढ़ का एक दिन , 'लहरों के राजहंस',आधे-अधूरे आदि नाटकों की रचना की। यद्यपि जीवन मूल्य के रूप में 'आधुनिकता' की अवधारणा पश्चिमी समाज की देन है। लेकिन राकेश की आधुनिकता भारतीय आधुनिकता के समानान्तर है। स्वाधीनता के बाद हमारे समाज में चारों ओर कुंठा, निराशा, अकेलापन, भ्रष्टाचार, स्वार्थान्धता, अवसरवादिता, अर्थाभाव, अलगाव आदि बुरी तरह से फैले हुए हैं। जिसके फलस्वरूप आज का व्यक्ति दुहरी जिन्दगी जी रहा है। मोहन राकेश ने बदलते हुए जीवन-परिवेश के साथ अपनी संगति रखने का प्रयास किया है और शायद इसीलिए आधुनिकता बोध उनकी रचनाओं में सहज ही व्यक्त होता रहा है। उनकी नाट्यत्रयी में मानवीय सम्बन्धों का विशेष कर बदलते हुए एवं टूटते हुए सामाजिक मूल्यों के सन्दर्भ में व्यक्ति के निजी सम्बन्धों का, पति-पत्नी के रिश्तों की दरारों का स्पष्ट वर्णन है। उन्होंने आधुनिक भावबोध की अनेक समस्याओं जैसे अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, सम्बन्धों का विघटन और जुड़े रहने की छटपटाहट, आर्थिक विवशता और जिन्दगी के दुहरेपन, अस्तित्व की चेतना और संघर्ष आदि को गहराई से उठाया है। उन्होंने अपने नाटकों के द्वारा परम्पराओं से अलग एक नया प्रतिमान स्थापित किया है। प्रख्यात नाट्य समीक्षक डॉ. गुरेश अवस्थी का कहना है -"उन्होंने अपने नाटकों से हिन्दी में एक नया दर्शक वर्ग तैयार किया और जयशंकर प्रसाद के बाद पहली बार हिन्दी रंगमंच की समर्थता का एहसास कराया।"[5] उनके नाटकों की आधुनिकता जीवन की यथार्थवादी चेतना से जुड़कर स्पष्ट होती है। उनकी विशेषता इसी में है कि उन्होंने नाटक के लिए तकनीक और नयी भाषा का आविष्कार किया। नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के निर्देशक तथा प्रख्यात रंगकर्मी अल्काजी ने कहा है -"उनकी सारी चेतना व्यवस्था के प्रति उनकी विचारधारा 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' में प्रतिबिम्बित हैं। 'आधे अधूरे' के जरिये उन्होंने हिन्दी नाटक को एक नई भाषा और एक नया तेवर दिया। भारतीय रंगमंच के नये युग की शुरूआत उनके द्वारा ही होते हैं।"[6]

आधुनिकता के विविध आयाम मोहन राकेश के नाटकों के विविधि भंगिमाओं में परिलक्षित होते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन','लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे' तीनों नाटकों का कथानक आधुनिक संवेदना की उपज है। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की कथावस्तु कवि कालिदास और उनकी बाल संगिनी मल्लिका से सम्बन्धित है। नाटक या नायक कालिदास अति मानव नहीं साधारण मनुष्य है, जो अपने अन्तर्द्वन्द्व से टूटता है लेकिन उसका विरोध नहीं कर पाता। नाटक की नायिका कालिदास से प्यार करती है और प्रेमी को जिन्दगी में आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा भी देती रही। मल्लिका से प्रेरित होकर कालिदास उज्जैन चला गया। बिना किसी आकांक्षा से वह गुप्त सम्राट का राजकवि और फिर कश्मीर का शासक बन जाता है। उज्जैन जाने के बाद राजकवि, राज्याधिकारी और राजकुमारी प्रियंगु जैसी पत्नी को पाकर भी कालिदास को हमेशा मल्लिका का अभाव महसूस होता था। जिसका प्रतिबिम्ब उन्होंने अपनी हर रचना में किया है - "विरहविमर्दिता यक्षिणी तुम हो.....।

अभिज्ञान शकुन्तलम में शकुन्तला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थी।"[7] कालिदास आधुनिक साहित्यकार की नियति का प्रतीक है। कालिदास की तरह सरकारी सम्मान में बौद्धिक प्रतिभाओं में छटपटाते और टूटते कलाकार आज भी देखने को मिलते हैं। स्वयं राकेश ने लिखा है - "कालिदास मेरे लिए व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है, नाटक में यह प्रतीक उस अन्तर्द्वन्द्व को संकेतित करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आन्दोलित करता है। व्यक्तिकालिदास को उस अन्तर्द्वन्द्व में से गुजरना पड़ा या नहीं, यह बात गौण है। मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुतों को उसमें से गुजरना पड़ा है, हम भी आज उसमें से गुजर रहे हैं।"[8] राकेश जी की पौराणिक कथाओं में भी आधुनिक मर्म-कथा उभरती है। उनका ध्येय आधुनिकता के सन्दर्भ में इतिहास का प्रयोग केवल उपकरण के रूप में करना है। "कालिदास के अकेलेपन, विच्छिन्नता, अस्तित्व संकट, आत्म निर्वासन तथा भविष्य के प्रति अनिश्चितता में आधुनिक भावबोध के संकेत हैं।"[9]

मोहन राकेश ने आषाढ़ का एक दिन नाटक की तरह लहरों के राजहंस में भी ऐतिहासिक विषयवस्तु के परिप्रेक्ष्य में जो कुछ प्रस्तुत करना चाहा है वह आज के जीवन की ही अभिव्यक्तिहै। "वे ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों को दोहरी अर्थवत्ता से बाँधते हैं तथा समकालीन कथानकों को आज के जीवन की विसंगति और ज्वलन्त समस्याओं में ले जाकर खोलते हैं।"[10] लहरों के होने का स्पष्ट संकेत मिलते हैं। नाटक के नायक नन्द और नायिका सुन्दरी के माध्यम से आधुनिक स्त्री पुरुषों के अन्तर्विरोधों, द्वन्द्व और संघर्ष को चित्रित किया गया है। नन्द एक साधारण मनुष्य है जो द्वन्द्वयुक्तआधुनिक पुरुष का प्रतीक है। "नन्द प्रकारान्तर से उस आधुनिक व्यक्ति का प्रतीक है जो जीवन को किसी आवरण से नहीं स्वयं छूकर मौलिक रूप से देखना चाहता है। परिस्थितियों और पद्धतियों ने आज के मनुष्य को उस बिन्दु पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ वह विभाजित होने के लिए मजबूर है। आज के व्यक्ति की यह सच्चाई है कि वह किसी एक पद्धति को स्वीकार नहीं कर सकता।"[11] इस नाटक की नायिका सुन्दरी आधुनिक विदुषी, स्वाभिमानी तथा गर्वमयी स्त्री का प्रतीक है। पति-पत्नी में एक-दूसरे के सम्बन्धों के प्रति शंका होने की स्थिति ही पारिवारिक टूटन का मुख्य कारण है। नन्द की पत्नी सुन्दरी अपने पति को दूसरों के सम्बन्ध में बर्दाश्त नहीं कर पाती। इसी वजह से दोनों के बीच तनाव पैदा होता है। नन्द अपने अन्तर्द्वन्द्व से इतना टूट चुका है कि पत्नी के पास रहकर भी होने के बोध से टकराता है। वह अपने आपको अधूरा अनुभव करते हुए कहता है - ".....सब जगह मैं अपने को एक-सा अधूरा अनुभव करता हूँ।"[12] सुन्दरी हारकर भी अपनी हार स्वीकार नहीं करती। वह अपने उद्वेग का वास्तविक कारण स्वयं को मानती है। स्वयं के बारे में किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं करती। सुन्दरी से तंग आकर नन्द उसे छोड़कर गौतम बुद्ध के पास चला जाता है। लेकिन बुद्ध ने भी उसका मुण्डन कराकर उनकी चुनौती को इनकार करना चाहा है। नन्द सुन्दरी तथा बुद्ध के बीच स्वयं को असहाय महसूस करता है। बुद्ध के पास से नन्द घर वापस आता है। इस नाटक में आधुनिकता बोध नन्द के अनिर्णय की स्थिति में परावेषन और परम्परा से कटकर जीने में मिलती है।

वर्तमान समय में परिवार में आर्थिक तनाव को दूर करने के लिए स्त्रियाँ भी नौकरी करने लगी हैं। जिन परिवारों में केवल पत्नी कमाती है, पति बेरोजगार है, तब प्रायः पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव पैदा होता है। "आधे-अधूरे नाटक में शहर में रहने वाले उस मध्यवर्गीय परिवार की तस्वीर है, जहाँ पत्नी नौकरी करके घर चलाती है और नियोजित परिवार के चार प्राणी उसकी कमाई पर जीते हैं।"[13] इस नाटक में सावित्री को महत्वाकांक्षिणी आधुनिक नारी के रूप में प्रस्तुत किया है, जो पति की असमर्थता अथवा आर्थिक वैषम्य को उसका अधूरापन मानकर स्वयं अपने अधूरेपन को अन्य पुरूषों से सम्बन्ध कर पूर्ण होने का प्रयास करती है। नायक महेन्द्रनाथ अन्तर्द्वन्द्व को खुद झेलता है लेकिन इसका विरोध नहीं कर पाता। खुद उसने ही कहा - ".....मैं इस घर में एक रबड़-स्टेम्प भी नहीं सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा।"[14] पति-पत्नी दोनों के बीच तनाव बढ़ता गया। एक-दूसरे से अलग होना चाहकर भी सम्बन्धों को ढोने के लिए वे विवश हैं। अर्थाभाव के कारण उनका जीवन पेचीदा बनकर रह गया है। इस नाटक में आधुनिकता अर्थ के अभाव और बेकारी की हालत में स्पष्ट होती है जिससे अलगाव, अर्थाभाव और सम्बन्धों का परायापन उभारता है।

अतः मोहन राकेश ने अपने नाटकों में परिवार की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों और मानसिक तनाव को

झेल रहे आधुनिक व्यक्ति को दिखाया है। इस तनाव में आधुनिकता का बोध स्पष्ट होता है। डॉ. सुरेश सिन्हा जी का कहना है -"मोहन राकेश आधुनिकता के प्रति अतिरिक्त रूप से मोहग्रस्त हैं। इसलिए वे परम्परागत आदर्शों को स्वीकारना पुरानापन समझते हैं - उनके लिए उनकी उपयोगिता-अनुपयोगिता का प्रश्न ही नहीं उठता। वे चूँकि मनुष्य को उसके यथार्थ परिवेश में चित्रित करने पर बल देते हैं, इसलिए वे मानते हैं कि जब तक यथार्थ परिवेश नहीं सुधरेगा, मानव-मूल्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।"[15]

आधुनिकता नायक की वापसी और प्रेयसी के समक्ष परायापन और अजनबी होने के बोध से स्पष्ट होती है। इस दृष्टि से राकेश के तीनों नाटकों में आधुनिकता बोध स्पष्ट हुआ है। उनके नाटकों का नायक चाहे कालिदास हो, या नन्द हो या महेन्द्र नाथ, सभी अपना घर-परिवार छोड़कर चला जाता है फिर घर की तलाश में वापस आता है और स्वयं घर में आकर अपने आपको अजनबी, पराया, अकेला और निर्वासित अनुभव करता है। अतः आधुनिकता नाटक में पात्रों की बेचैनी, तनाव और छअपटाहट में जाकर उभरती है और 'मैं' के फालतू होने की गहराई में स्पष्ट होती है। राकेश के नाटकों के पात्र कालिदास, नन्द, महेन्द्र नाथ जैसा व्यक्ति हर युग में होता है और अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ता है। उनके नाटक में आधुनिकता कथानक के साथ कलापक्ष की दृष्टि से भी स्पष्ट होती है। रंगमंच की नवीनता, संवादों की नवीनता, नूतन प्रतीक योजना और भाषा के माध्यम से नाटक के कथावस्तु को घटनाओं से नहीं बल्कि आज के व्यक्ति की मनःस्थितियों की बनावट से निर्मित किया है। लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है - "लहरों के राजहंस तथा आषाढ़ का एक दिन मोहन राकेश के नाटक हैं, जिनमें आधुनिक शिल्प, नये मूल्य और अभिनव परिवेश को महत्ता दी गई है। ये नाटक हिन्दी नाट्य-साहित्य की नवीनता प्रगति की ओर संकेत करते हैं।"[16] आषाढ़ का एक दिन, 'लहरों के राजहंस' और 'आधे-अधूरे' नाटक अपनी अर्थवत्ता और शिल्प के कारण आकर्षक हैं। व्यापार और अर्थ दोनों दृष्टियों से ये नाटक अत्याधुनिक हैं। अतः उनके नाटकों में आधुनिक मनुष्य की नियति की खोज में आधुनिक-भाव बोध का गहरा रूप मिलता है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. डॉ. नगेन्द्र - नयी समीक्षाः नये सन्दर्भ, पृ. 63
2. मिश्र, डॉ. उर्मिला - आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ. 4 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. वर्मा, लक्ष्मीकान्त-नये प्रतिमान और पुराने निकष, पृ.17
4. अग्रवाल, डॉ. विपिन कुमार-आधुनिकता के पहलू, पृ.13
5. अवस्थी, डॉ. सुरेश - धर्मयुग, 17 दिसम्बर 1972, पृ. 23
6. रंगकर्मी अल्काजी - धर्मयुग, 17 दिसम्बर 1972, पृ. 23
7. मोहन राकेश - आषाढ़ का एक दिन, पृ. 109, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, संस्करण 1983
8. मोहन राकेश - लहरों के राजहंस, भूमिका, पृ. 8, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1970 तथा संस्करण 1978
9. गौतम, डॉ. रमेश - हिन्दी के प्रतीक नाटक, पृ. 176, प्रथम संस्करण 1979, नचिकेता प्रकाशन, नई दिल्ली
10. मिश्र, डॉ0 उर्मिला - आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ. 110 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
11. गौतम, डॉ. रमेश - हिन्दी के प्रतीक नाटक, पृ. 185, प्रथम संस्करण 1979, नचिकेता प्रकाशन, नई दिल्ली
12. मोहन राकेश - लहरों के राजहंस, भूमिका, पृ. 137, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1970 तथा संस्करण 1978
13. मोहन राकेश - आधे अधूरे, पृ. 47, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1974 तथा संस्करण 1977
14. मोहन राकेश - आधे अधूरे, पृ. 44, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1974 तथा संस्करण 1977
15. सिन्हा, डॉ0 सुरेश - हिन्दी उपन्यास, पृ. 350 - द्वितीय संस्करणः मई 172, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
16. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर - 20 वीं शताब्दी हिन्दी साहित्यः नये सन्दर्भ, आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ. 224

एसोसिएट प्रोफेसर एवं
विभागाध्यक्षा (हिंदी विभाग)
मनोहारी देवी कनई महिला महाविद्यालय
डिब्रूगढ़ (असम) - 786001
मोबाइल नं. 09435160571